Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रौतयज्ञ-परिचय

महामहोपाध्याय वैदिकमूर्धन्य
पण्डितप्रवर श्रीविद्याधर गौड़ द्वारा
लिखित

[कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका
का
सानुवाद उद्धृतांश]

मावृत्ति १०००] संवत् २०१३ [मूल्य २)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकाशक—

मन्त्री, वैदिक कर्मकाण्डमण्डल,

सकरकन्दगली, काशी

294.538
GAU

INDIRA GANDHI
NATIONAL CENTRE
FOR THE ARTS

ACC NO. 94-50686
DATE 1.9.94

मूल्य २)

संवत् २०१३

मुद्रक—

बी० के० शास्त्री

ज्योतिष प्रकाश प्रेस विश्वेश्वरगंज, काशी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय म० म० श्री विद्याधर जी गौड़ की

संक्षिप्त जीवनी

'श्रौतयज्ञ-परिचय' 'कात्यायनश्रौतसूत्र' की भूमिका का एक अंश है। क्त सूत्रकी सरलावृत्ति और भूमिका लिखकर वैदिकमूर्धन्य महामहोपाध्याय र्गीय विद्याधर शर्मा गौड़जी ने वैदिक-साहित्य में प्रवेशाकांक्षियों का जो महान् पकार किया है, वह चिरस्मरणीय रहेगा। श्रौतयज्ञ-परिचय के प्रकाशन के इस भ अवसर पर उनकी संक्षिप्त जीवनी पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न गा, अतः उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

बाल्यकाल—पं० विद्याधरजी गौड़ का जन्म अपने मातृकुल में (नाना के हाँ ग्राम दूठी, जि० रोहतक पूर्वी पञ्जाब में) संवत् १९४३ पौष कृष्ण २ या क्रवार को हुआ था। वे अपने भाग्यशाली पिता के गुणश्रेष्ठ ज्येष्ठ पुत्र थे। ० विद्याधरजी के पिता पं० प्रभुदत्त जी अग्निहोत्री अपने समय के प्रकाण्ड वैदिक । वेदपारंगत होते हुए भी उनकी व्याकरणादि व्युत्पादक शास्त्रों में हुत अच्छी प्रगति थी। उनकी प्रखर प्रतिभा के कारण ही भारत-सम्राट् ने दिक होते हुए भी उन्हें महामहोपाध्याय पदवी से सम्मानित किया था। धनिक माज में भी उनका बड़ा सम्मान था। उन्होंने जातक के सम्पूर्ण संस्कार अपनी र्यादा के अनुरूप सविधि किये थे। शास्त्रों में प्रसिद्ध है कि अन्नप्राशन के समय ालक के सम्मुख पुस्तक, लेखनी, सुवर्ण, रजत, मुद्रा, वस्त्र आदि आजीविका के विविध साधन रखे जाते हैं। उनमें से जिसे बालक छूता है उससे उसकी आजी- विका समझी जाती है। बालक विद्याधर ने वेद-पुस्तक का स्पर्श किया था। इसी से उनकी वैदिक-प्रकाण्डता का अनुमान उनके पिताजी को हो गया था।

अध्ययन—वैदिक पिता के घर में वेदविद्या के प्रसार, प्रचार और उद्धार के लिए ही उन्होंने जन्म लिया था। पिताजी के निकट वेदादि का अध्ययन कर अल्पकाल में ही वे प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् हो गये। मूल वेदपाठ, पद, क्रम आदि उन्होंने जैसे पूर्ण अभ्यस्त किये वैसे ही वेदार्थ में भी उन्हें अपूर्व कौशल

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राप्त हुआ। वेद और कर्मकाण्ड के अतिरिक्त मीमांसा, धर्मशास्त्र, साहित्य तथा व्याकरण में भी उन्होंने अच्छी प्रौढ़ि प्राप्त कर ली थी।

अध्यापन का श्रीगणेश—१६ वर्ष की अवस्था में आप अपने पिताजी के साथ यज्ञार्थ कलकत्ता गये। उस अल्पावस्था में आपकी प्रगाढ विद्वत्ता देखकर वहाँ का विद्वत्समाज तथा श्रेष्ठिवर्ग अत्यन्त चमत्कृत हुआ। सबने सम्मिलित हो एक स्वर से यह निश्चय किया कि ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् को वेदाध्यापनार्थ ससम्मान कलकत्ते में प्रश्रय दिया जाय। तदनुसार आप साग्रह कलकत्ते बुलाये गये। सबका विशेष अनुरोध देखकर आप वहाँ गये, छः मास अध्यापन भी किया, पर काशी का विछोह सहन न होने के कारण आप काशी चले आये।

काशी में अध्यापन—आपने काशी में मीरघाट मुहल्ले में स्थित रामदयाल-चुन्नीलाल-संस्कृत विद्यालय में जीवन के प्रभात से ही वेद पढ़ाना आरम्भ किया था जो मरणपर्यन्त निरन्तर चलता रहा। उक्त पाठशाला में आप दिन में १२ बजे से ३ बजे तक मूल वेद संहिता, पद, क्रम, जटा आदि अष्ट विकृतियों का अनुशीलन कराया करते थे। काशी में एकमात्र इसी विद्यालय में गुणनिका संथा से वेदाध्ययनाध्यापन होता था। ५०–६० विद्यार्थी एक साथ एक स्वर में मूल वेदपाठ कण्ठस्थ करते थे। गुणनिका संथा रूप में मूल वेद का पठन-पाठन आपके साथ ही लुप्त हो गया।

ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् भारतभूषण महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी की गुणियों की पारखी दिव्यदृष्टि से कैसे छिप सकते थे? आप काशी विश्वविद्यालय में धर्मविज्ञान-विभाग में प्राध्यापक पद पर ससम्मान बुलाये गये। अनेक वर्षों तक उक्त पद का योग्यतापूर्वक निर्वाहकर आप उक्त विभाग के अध्यक्ष पद पर आरूढ हुए।

विविध संस्थाओं से संबन्ध—विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अन्यान्यविद्या-संस्थाओं से भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। आप कई वर्षों तक काशी के संन्यासी संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल रहे। काशी के सुप्रसिद्ध श्रीजोखीराम-मटरूमल्लगोयनका-संस्कृतमहाविद्यालय में अपराह्न ३ बजे के अनन्तर वेदविद्या-पारंगत विद्वानों को विशिष्ट शिक्षा दिया करते थे। ज्ञानवापी के निकट श्रीसत्य-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नारायण वेद-विद्यालय में तथा सरस्वती फाटक स्थित सत्यनारायण मन्दिर में भी आपने कई वर्षों तक वेदाध्यापन किया। आप काशी विश्वविद्यालय, काशीस्थ राजकीय संस्कृत महाविद्यालय (Govt. Sanskrit College) तथा बिहार संस्कृत एसोशिएशन समिति की पाठ्यनिर्धारिणी समिति तथा परीक्षाबोर्ड के माननीय सदस्य, परीक्षक तथा प्रश्नसंशोधक रहा करते थे। उपर्युक्त विशिष्ट संस्थाओं के अतिरिक्त कलकत्ता, उड़ीसा, जयपुर, नागपुर, लाहौर आदि की सर्वोच्च परीक्षाओं के परीक्षक रहते थे।

छात्रसंपत्ति—इतने महाविद्यालय तथा विद्यालयों से जिनका प्राधान्येन घनिष्ठ संबन्ध रहा, उनके विद्यार्थियों की संख्या का सहज में अनुमान किया जा सकता है। म० म० पं० विद्याधर जी की विद्या, सदाशयता, सद्धर्मनिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा के अनुरूप उनके सहस्रों छात्र देश के कोने-कोने में वेद, कर्मकाण्ड, पौरोहित्यका प्रचार तथा प्रसार कर रहे हैं। यद्यपि उनकी साकल्येन गणना इस अल्पकाय निबन्ध में करना संभव नहीं है, तथापि परिचय में आये हुए, उच्चपदों पर आरूढ कतिपय मुख्यतमों का निर्देश किया जाता है—

(१) पं० विश्वनाथशास्त्री (पाण्डेय) वेदाचार्य प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
(२) पं० भगवत्प्रसाद मिश्र वेदाचार्य प्रो० गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस
(३) पं० वंशीधर मिश्र वेदाचार्य प्रो० श्री जो० म० गोयनका-संस्कृत-महाविद्यालय, काशी
(४) पं० जगदानन्द झा वेदाचार्य प्रो० गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, पटना
(५) पं० रमाकान्त झा वेदाचार्य प्रो० संस्कृत कालेज, सुलतानगंज (भागलपुर)
(६) पं० योगीन्द्र झा वेदाचार्य प्रो० संस्कृत कालेज, मुजफ्फरपुर
(७) पं० दामोदर झा वेदाचार्य राजकीय सं० कालेज, गिद्धौर
(८) पं० कमलनयन वेदाचार्य अध्यापक-संस्कृत विद्यालय, सोहनाग, देवरिया
(९) पं० सूर्यनारायण गौड़ वेदाचार्य प्रो० राजकीय संस्कृत कालेज, जयपुर
(१०) पं० गिरिजाप्रसाद वेदाचार्य राजपण्डित भिनगा स्टेट (बहराइच)
(११) पं० शिवमोहन दीक्षित वेदाचार्य, कानपुर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(१२) (स्व०) पं० विजयचन्द्र चतुर्वेदी भूतपूर्व प्रो० गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस

(१३) ,, पं० रामजीव द्विवेदी वेदाचार्य भूतपूर्व प्रो० हिन्दू वि०वि०काशी

(१४) ,, पं० मार्तण्ड शास्त्री घोडेकर भूतपूर्व वेदाचार्य, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

(१५) ,, पं० चन्द्रधर चौधरी वेदाचार्य, दरभंगा

(१६) पं० हरिनारायण सारस्वत कर्मकाण्डी, काशी

(१७) पं० केदारनाथ अग्निहोत्री, काशी

(१८) पं० गङ्गाप्रकाश ब्रह्मचारी (सन्ध्याब्रह्मचारी), आदि आदि ।

ग्रन्थ-निर्माण—अध्यापन के अतिरिक्त ग्रन्थ-प्रणयन में भी आपकी विशेष अभिरुचि थी । आपने कई ग्रन्थों का प्रणयन किया । कात्यायन-श्रौतसूत्र पर सरला विवृति तथा शुल्वसूत्र पर सरला विवृति लिखकर आपने वैदिक-जगत् का बड़ा उपकार किया है । कात्यायन-श्रौतसूत्र की भूमिका में प्राचीन काल में भारत में जो नानाविध यज्ञ-याग मनोकामनापूर्ति के परम साधन समझे जाते थे, जिनपर प्राणिमात्र की अपार आस्था थी, उनका पूर्ण विवरण देकर वेद-मार्गावलम्बी साधारण जनता को आप ऋणी बना गये हैं । इनके अतिरिक्त विवाहपद्धति, उपनयनपद्धति, चूडाकरणपद्धति, शिलान्यासपद्धति, स्मार्तप्रभु आदि सर्वसाधारणोपयोगी ग्रन्थों की रचनाकर आपने जनता का महान् उपकार किया है । ग्रन्थलेखन के अतिरिक्त ग्रन्थसम्पादन में भी आपकी अभिरुचि कम न थी । यथावकाश आप सुन्दर टिप्पणी आदि के साथ ग्रन्थ-सम्पादन भी करते थे । देवयाज्ञिक-पद्धति तथा श्राद्धसार सटिप्पण आदि इसके प्रमाण हैं ।

आप लिखने में भी बड़े सिद्धहस्त थे । आपकी हस्तलिपि सुन्दर, सुडौल तथा सुवाच्य होती थी । आपने सैकड़ों प्राचीन दुर्लभ पुस्तकें अपने हाथ से लिखकर अपने संग्रह को बहुमूल्य बनाया था, जो आज भी आपके संग्रह की श्रीवृद्धि कर रही हैं ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेद-प्रसारार्थ विविध यत्न—आपने वेदाध्यापन के अतिरिक्त वेदप्रचार के लिए और भी अनेक सत्प्रयत्न किये थे। सन् १९२४ में तत्कालीन प्रिन्सिपल स्व० म० म० गङ्गानाथ झाजी से अनुरोधकर गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस में आपने शुक्लयजुर्वेद के अध्यापक की गद्दी स्थापित करायी तथा शुक्ल यजुर्वेद की परीक्षा का प्रारम्भ कराया। संस्कृत शिक्षा की उन्नति के लिए सतत सचेष्ट श्रीसेठ गौरीशङ्कर गोयनका से आग्रह कर उनके काशीस्थ श्री जो० म० गोयनका-संस्कृत-महाविद्यालय में शुक्लयजुर्वेद के अतिरिक्त ऋग्वेद, कृष्णयजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के अध्यापकों की नियुक्ति कराकर चारों वेदों का अध्यापन आरंभ कराया। विश्वविद्यालय में भी पहले केवल शुक्ल यजुर्वेद का ही अध्यापन होता था, पर पीछे आपके ही सत्प्रयत्न से चारों वेदों का पठन-पाठन तथा परीक्षण आरम्भ हुआ।

राजसम्मान—भारत सरकार ने आपके वैदुष्य से प्रसन्न तथा प्रभावित होकर आपको महामहोपाध्याय पदवी से विभूषित किया। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण ही वैदिक होते हुए भी आप महामहोपाध्याय हुए। वेद-विद्वानों का इस प्रकार का सम्मान प्रायः आपके ही कुल में देखने में आया।

सर्वतोमुख ख्याति और लक्ष्मी कृपा—जीवन के प्रभात में ही लोकप्रतिष्ठा ने आपका वरण कर लिया था। आपके चमत्कारपूर्ण वैदुष्य, कर्मकाण्ड-नपुण्य, मधुरभाषिता, सरल स्वभाव, निःस्पृहता आदि गुणगणों के कारण राजाओं में, श्रेष्ठियों में, विद्वानों में, सवसाधारण जनता में सर्वत्र ही आपकी प्रशंसा, प्रतिष्ठा, समादर, और सत्कार रहा। आपने राजा-महाराजों, सेठ-साहुकारों के सादर-साग्रह निमन्त्रणों पर अनेक यज्ञयाग कराये, जिससे आपको प्रचुर धन की प्राप्ति हुई। आप माता सरस्वती के वात्सल्य के साथ ही लक्ष्मीजी के वात्सल्य के भी भाजन बन गये। किन्तु इतनी विपुल प्रतिष्ठा तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होने पर भी अहङ्कार आप को छू तक नहीं गया। प्रत्युत आप सुन्दर प्रचुर फल-फूलों से लदे हुए वृक्ष के समान और विनम्र हो गये।

विद्या मदो धनं मदो मदोऽभिजन एव च।
एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह उक्ति आपपर पूर्ण चरितार्थ हुई।

धर्म पर अटल निष्ठा—आप श्रुति-स्मृति-पुराणप्रतिपादित परम्पराप्राप्त सनातन वैदिक धर्म के परम अनुयायी थे। अपनी धार्मिक निष्ठा के कारण ही आपने चिरकाल से घनिष्ठ सम्पर्कवाले बड़े-बड़े धनवानों के घरों का सम्बन्ध शिथिल ही नहीं, सर्वथा त्याग दिया था। आप श्रुति-स्मृति-पुराणप्रतिपादित सनातन धर्म का अनुसरण करनेवाले केवल द्विजों के यहाँ ही धार्मिक कृत्य कराते थे। धर्म के सम्बन्ध में आप सदा स्वतन्त्र रहे, किसी प्रकार का दबाव या अर्थलोभ आपको इस व्रत से डिगाने में कभी समर्थ नहीं हुआ। आप विलायत-यात्रा कर चुके किसी भी पुरुष के यहाँ न तो जाते थे और न उसका द्रव्य ही ग्रहण करते थे। राजा डा० श्रीबलदेवदास बिरलाजी के सुपुत्र सेठ श्रीजुगलकिशोरजी बिरला ने सन् १९३८ में नयी दिल्ली में लक्ष्मीनारायण-मन्दिर (बिरला-मन्दिर) की प्रतिष्ठा कराने के लिए आपसे बहुत अनुरोध किया कि आप प्रतिष्ठा करा दें। उस अवसर पर आपने अपने व्रत को नहीं तोड़ा, बल्कि विशिष्ट अर्थलाभ की ओर दृष्टिपात न कर स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार उनके घरों में उपनयन-संस्कार भी नहीं कराया तथा मन्त्रदीक्षा भी नहीं दी। आप सदा धर्म के सामने अर्थ को नगण्य समझते रहे।

जिन दिनों महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी का अछूतोद्धार चल रहा था, उन दिनों आप विश्वविद्यालय में धर्मविज्ञान-विभाग के प्रिंसिपल तथा 'डीन आफ दी फैकल्टी' थे। फिर भी आप महामना मालवीयजी के अछूतोद्धार सम्बन्धी विचारों से सर्वथा विरुद्ध रहे।

एक बार महामना मालवीयजी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सब (दशविध) ब्राह्मणों की एक सभा की, उसमें सब दशविध ब्राह्मणों का खान-पान एक हो तथा सभी का परस्पर विवाह सम्बन्ध होने लगे, इस विषय का प्रस्ताव महामनाजी ने रखा। उक्त प्रस्ताव की पुष्टि के लिए महामनाजी ने काशी के विद्वानों, विशेषतः हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापकों के हस्ताक्षर कराने चाहे, किन्तु हस्ताक्षर करना तो दूर रहा, आपने स्पष्ट शब्दों में मालवीयजी के प्रस्ताव का विरोध किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परोपकारिता—आपकी परोपकार-परायणता प्रसिद्ध थी। आपने अपने सदुद्योग से अनेकों विद्वानों को ऊँचे-ऊँचे अध्यापकपदों पर आरूढ़ कराया तो अनेक निराश्रित गृहस्थों की आजीविका की व्यवस्था कर दी, सहस्रों छात्रों को बौद्धिक तथा आर्थिक सहायता स्वयं कर तथा अन्यों द्वारा दिलाकर उनका जीवन सुखशान्तिमय बनाया।

विद्या द्वारा आपको विपुल धन की प्राप्ति हुई, यह पहले लिखा ही जा चुका है। राजा-महाराजों के यहाँ यज्ञ-यागों में ५०००–१००० हजार दक्षिणा वैदिकों में आपको ही प्राप्त हुई। प्रायः काशी की विद्वन्मण्डली आप से ऋण के रूप में द्रव्य लिया करती थी। आप यथासंभव सभीको बिना लिखापढ़ी के निर्व्याज द्रव्य दिया करते थे। आपकी उदारता का बहुत लोगों ने दुरुपयोग भी किया, पर आपने द्रव्य के लिए किसीको भी कभी बाध्य नहीं किया। बहुत लोगों के मकान १५-२० वर्षों से आपके पास रेहन और बन्धक पड़े थे। जब आपकी मृत्यु का समय निकट आया, तब मकानदार आपके शरणागत होकर बोले—'पण्डितजी, बीस वर्षों का व्याज तो क्या, आपका पूरा मूलधन भी देने में हम असमर्थ हैं। अतः आप हमारा उद्धार कर दीजिये। आपने बिना ननु-नच किये कहा—'जो आपकी इच्छा हो, दे जाइये।' इस प्रकार कुछ ले-देकर उनको चिन्तामुक्त कर दिया।

दैनिक चर्या—आप नित्य प्रातःकाल गङ्गास्नान, त्रिकालसन्ध्या, देवपितृ-तर्पण, विश्वनाथादि देवदर्शन करके दैनिक दुर्गापाठ किया करते थे। आप समय को अत्यधिक मूल्यवान् समझते थे। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। आप शतावधानियों के तुल्य एक ही समय में अनेक काम कर लेते थे—एक ओर वेद का मूलपाठ पढ़ाते तो दूसरी ओर वेद-भाष्य आदि का पाठ पढ़ाते। इसी तरह एक ओर साहित्य का पाठ पढ़ाते तो अन्य ओर व्याकरणादि का पाठ पढ़ाते थे। साथ ही साथ पुस्तक-लेखन, बाहर से आये हुए पत्रों का उत्तर तथा धार्मिक व्यवस्था भी लिखते रहते थे। आपकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। अमुक शास्त्रीय विषय अमुक ग्रन्थ के अमुक पृष्ठ पर मिलेगा, यह तुरन्त बता देते थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आप अत्यन्त सत्यवादी थे, आपका रहन-सहन सादा था। अभिमान और क्रोध तो आपको छूतक नहीं गया था, विनय की तो आप साक्षात् मूर्ति थे।

विद्या ददाति विनयं विनायाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

सचमुच आपका जीवन इस श्लोक का उदाहरण था।

आप श्रौत-स्मार्त अग्निहोत्री थे। आपके यहाँ विधिपूर्वक दर्शपूर्णमासेष्टि होती थीं। उन्हें देखने के लिए बाबू शिवप्रसाद गुप्त, बी. एन. मेहता कलक्ट बनारस आदि अनेक भारतीय संस्कृति के प्रेमी सज्जन आते थे।

लोकसंग्रहप्रवणता—देखने में आता है कि इस प्रकार के प्रकाण्ड विद्वा प्रायः एकान्त-सेवी होते हैं; उनका बहुत कम लोगों से सम्पर्क रहता है, परन्तु पण्डि श्रीविद्याधरजी इसके अपवाद थे। वे जैसे प्रकाण्ड पण्डित थे वैसे ही लोकसंग्र भी थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजों, सेठ-साहूकारों, उच्च पदारूढ़ राजकर्मचारि तथा बड़े-बड़े नेताओं से उनका पूर्ण सम्पर्क रहता था। छोटे से छोटे तथा ब से बड़े सभी वर्गों में उन्हें सम्मान तथा ख्याति प्राप्त थी। पण्डितसमाज तो वे मुखिया ही थे। किसी न किसी रूप में सारा विद्वन्मण्डल आपसे उपकृ था। विद्वानों का कहना है कि महामहोपाध्याय पण्डित श्रीशिवकुमार शास्त्र जी के बाद विद्वत्ताप्रयुक्त जैसी ख्याति और सम्पत्ति आपको प्राप्त हुई वै अन्य किसीको भी प्राप्त नहीं हुई।

अन्यान्य विशिष्ट कार्य—आपने सन् १९२१ में वैदिक कर्मकाण्ड-मण की स्थापना की तथा सन् १९२७ में अपने पूज्य पिताजी की स्मृति में श्रीप्रभु वेद-विद्यालय की स्थापना की। दोनों संस्थाएँ अपने जन्मदिन से ही लोकोप कार्य कर रही हैं। प्रथम संस्था जनता में विविध धार्मिक व्यवस्थाओं के वित तथा यज्ञ-यागादि के अनुष्ठान द्वारा जनकल्याण कर रही है तो दूसरी वेद भग के प्रचार तथा प्रसार से। अपने तपःपूत जीवन से आपने अपने घर वेदविद्याका स्रोत बना दिया था। उसमें अष्टविध विकृतियों के साथ मूल वेद पाठ, भाष्यादि ग्रन्थों का अध्यापन, चारों वेदों के द्वारा वेदार्थ का प्र

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैदिक ग्रन्थों के वृत्ति-विवरण का प्रणयन, लेखन आदि निरन्तर होता रहता था।

पारिवारिक जीवन और अवसान—आपका पारिवारिक जीवन भी विशेष अनुकरणीय एवं आदर्श रहा। आपका भ्रातृप्रेम एवं परिवारप्रेम उज्ज्वल रहा, जो आपके सौजन्य से आद्योपान्त निभा। संवत् १९९८ पौषकृष्णा द्वितीया शुक्रवार तदनुसार दिनाङ्क ५ दिसम्बर १९४१ को प्रातः १०॥ बजे ५५ वर्ष की अवस्था में आपने यह नश्वर पाञ्चभौतिक शरीर का विश्वनाथनगरी काशी में त्याग कर शिवसायुज्य लाभ किया। आप अपने पीछे ५ पुत्र, २ पुत्रियां और अनेक पौत्र आदि से परिपूर्ण, हराभरा परिवार छोड़ गये। आपके पांचों पुत्र प्रतिभासम्पन्न तथा सुखी हैं, जिनमें दो पुत्र वेदाचार्य परीक्षोत्तीर्ण और वेदाध्यापक हैं।

आपके शोक में काशीकी प्रायः सभी राजकीय-अराजकीय-महाविद्यालय आदि शिक्षासंस्थाएं एक दिन बन्द रखी गयीं। काशी की विद्वन्मण्डली और प्रतिष्ठित नागरिकों ने शोकसभा की। इसके अतिरिक्त सारे भारत की प्रमुख शिक्षासंस्थाओं द्वारा शोक मनाया गया। आपके देहावसान से शोकाकुल होकर भारतप्रसिद्ध 'महामहोपाध्याय पं० श्रीहरिहरकृपालुजी द्विवेदी ने सत्य ही कहा था—

'वेदवल्ली विलूना सा गता सौहार्दमाधुरी।
विधवा भारती भूता गते विद्याधरे दिवम्॥'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषयानुक्रमणिका

विषय	हिन्दी पृष्ठ संख्या	संस्कृत पृष्ठ संख्या
१. यज्ञादि का स्वरूप	१	१
२. स्मार्त अग्नि का आधानकाल	२	,,
३. स्मार्त अग्नि में कर्तव्य कर्म	,,	२
४. पाकयज्ञों में प्रथम यज्ञ औपासनहोम	३	,,
५. वैश्वदेव कर्म	४	३
६. पार्वण	,,	,,
७. अष्टकाश्राद्ध	,,	,,
८. मासि श्राद्ध	५	,,
९. श्रवणाकर्म	,,	४
१०. शूलगव	,,	,,
११. श्रौत आधान काल और उसके अधिकारी	,,	,,
१२. अग्निहोत्र में द्रव्य और देवता	६	५
१३. दर्श-पूर्णमास याग	८	६
१४. आधानानन्तर पहले पौर्णमास का तदनन्तर दर्शेष्टि का अनुष्ठान	१०	७
१५. दर्शपूर्णमास सब इष्टियों की प्रकृति	,,	,,
१६. दर्शपूर्णमास याग के पदार्थ	११	८
१७. चातुर्मास्य याग	१५	११
१८. प्रथम वैश्वदेव पर्व	,,	,,
१९. वरुणप्रघास नामक द्वितीय पर्व	१६	१२
२०. साकमेधसंज्ञक तृतीय पर्व	१८	१३
२१. शुनासीरीयसंज्ञक चतुर्थ पर्व	१९	१५
२२. चातुर्मास्ययाग में दो पक्ष	२०	,,
२३. चातुर्मास्यों का त्रैविध्य	२०	,,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	हिन्दी	संस्कृत
२४. निरूढपशुबन्ध	२१	१६
२५. आग्रयणेष्टि	२३	१७
२६. सौत्रामणीयाग	२४	१८
२७. सोमयाग का निरूपण	२७	२०
२८. महाभिषव	४५	३३
२९. क्षुल्लकाभिषव	,,	,,
३०. सवनीय पशु	४८	३५
३१. द्विदैवत्य ग्रह का भक्षण	५०	३७
३२. चमस-भक्षण	५१	,,
३३. ऋतु-ग्रह	५२	३८
३४. माध्यन्दिन-सवन	५४	३९
३५. तृतीय-सवन	५६	४१
३६. अवभृथ	५८	४२
३७. द्वादशाह-यज्ञ	५९	४३
३८. गवामयन सत्र	६३	४६
३९. वाजपेय-यज्ञ	६६	४८
४०. राजसूय-यज्ञ	६९	५०
४१. सोमयागाङ्ग अग्निचयन	७५	५४
४२. अश्वमेध यज्ञ	८३	६०
४३. पुरुषमेधयाग	८९	६५
४४. सर्वमेधयाग	९०	,,
४५. पितृमेधयाग	९१	६६
४६. एकाहयाग	,,	,,
४७. अहीनयाग	९६	७०
४८. सत्रों का निरूपण	९९	७२

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

* श्रीः *

श्रौतयज्ञ-परिचय

यज्ञादि का स्वरूप

श्रुति में वैदिक कर्म पांच प्रकारों में विभक्त हैं—"स एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि, पशुः, सोमः" (ऐत० ब्रा०) अर्थात् यह यज्ञ पांच प्रकार का है—अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग। किन्तु स्मृति में औपासनहोम, वैश्वदेव, पार्वण' अष्टका, मासि श्राद्ध, श्रवणा, शूलगव ये सात पाकयज्ञ; अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञ आदि दर्विहोम ये सात हविर्यज्ञ; अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम ये सात सोमसंस्थाएँ हैं[1] इन सब श्रौत और स्मार्तों को मिलाकर इक्कीस यज्ञ कहे गये हैं।

उनमें सात पाकयज्ञ स्मार्त हैं। उनका स्मृति में अथवा गृह्यसूत्र में निरूपण किया गया है, इसलिए श्रौतसूत्रकार ने उनका कात्यायन-श्रौतसूत्र में निरूपण नहीं किया। तथापि उनके स्वरूप का भी थोड़ा बहुत दिग्दर्शन संक्षेप में किया जाता है। पूर्वोक्त यज्ञों में जो ये स्मार्त यज्ञ हैं इनका अनुष्ठान स्मार्त अग्नि में वही पुरुष कर सकता है जिसने स्मार्त अग्नि का आधान किया हो।

१—औपासनहोमः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासि श्राद्धम्, श्रवणा, शूलगव इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः, अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः, अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयः, अतिरात्रः, अप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः। (गौ० ध० ८।१८)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्मार्त अग्नि का आधानकाल

"आवसथ्य अग्नि का आधान विवाह के समय, किन्हीं के मत में पैतृक सम्पत्ति के विभागकाल में होता है" पारस्करगृह्य सूत्र[1] तथा "अग्नि विवाह के या बंटवारे के बाद लेनी चाहिये" गौतमधर्म सूत्र[2] आदि के वचनों से विवाह से या बंटवारे के अनन्तर स्मार्त अग्नि का ग्रहण करना चाहिये। उन दोनों अवसरों में से विवाह में जो चतुर्थी कर्महोम होता है उसके पश्चात् "विवाह के अवसर पर आवसथ्य अग्नि का आधान होता है" इस पारस्करगृहसूत्र में वर्णित विधि से सम्पादित अग्नि स्मार्ताग्नि कहलाती है। गृह्य, आवसथ्य और औपासन उसीके पर्यायवाची शब्द हैं। यदि किसी दैवी विपत्ति अथवा मनुष्यकृत अपराध से विवाह के अवसर पर अग्न्याधान न हो सका हो तो बँटवारे के समय पारस्करगृह्यसूत्र में वर्णित पूर्वोक्त विधि से ही अग्न्याधान करना चाहिये। ये दो समय मुख्य माने गये हैं। यदि इन दोनों समयों में अग्न्याधान न हुआ हो तो जितना समय बीता हो उस समय के लिए जो प्रायश्चित्त बतलाया गया हो उसका अनुष्ठान कर अग्न्याधान करना चाहिये। यदि पिता ने अग्नि का ग्रहण न किया हो तो भी पुत्र को स्मार्त अग्नि के ग्रहण में अधिकार है ही। इस प्रकार गृहीत अग्नि में औपासनहोम आदि सात पाकयज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये।

स्मार्त अग्नि में कर्तव्य कर्म

यद्यपि "गृहस्थ विवाह-संस्कृत अग्नि में प्रतिदिन स्मार्त कर्म करे या विभाग के समय गृहीत अग्नि अथवा गृहपति के मरने पर गृहीत

१—"आवसथ्याधानं दारकाले" "दायाद्यकाल एकेषाम्"
(पा० गृ० १।२।१—२

२—"भार्याग्निर्निर्दायादिर्वा" (गौ० ध० ५।७)

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्नि में करे। अग्निहोत्रादि श्रौत कर्म आहवनीय आदि अग्नियों में करे[1]" इत्यादि याज्ञवल्क्यादि स्मृति के अनुसार देवयाज्ञिक ने कहा है कि शान्तिक, पौष्टिक आदि भी गृह्य अग्नि में करे, तथापि शान्तिक, पौष्टिक आदि कर्मों का अनुष्ठान शाला के बाहर करने का विधान है, अतः बिना किसी वचन के आवसथ्य अग्नि को अग्निशाला से बाहर ले जाने में वह लौकिक हो जायगी। इसलिए सीमन्त आदि, जिनका बाहर गृहाङ्गण में अनुष्ठान का विधान है, को शिष्ट लोग लौकिक अग्नि में ही करते हैं। अतः सब पाकयज्ञ तथा सब अपने संस्कार उपाकर्म आदि गृह्य अग्नि में किये जाते हैं। शेष सब पुत्रसंस्कार तथा शान्तिक, पौष्टिक आदि कर्म लौकिक अग्नि में ही होते हैं।

पाकयज्ञों में पहला यज्ञ औपासनहोम

"सायंकाल और प्रातःकाल दही से, चावलों से या अक्षतों से[2]" यों पारस्कर में उक्त पदार्थों द्वारा हाथ से किया जानेवाला होम औपासनहोम कहलाता है। उसमें सायंकाल में अग्नि प्रधान देवता है और प्रजापति स्विष्टकृत्[3] के स्थानापन्न अङ्ग देवता है एवं प्रातःकाल में सूर्य प्रधान देवता है और प्रजापति अङ्ग देवता है। इस होम का सायंकाल को आरम्भ करना चाहिये। यह सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक एक कर्म है, इसलिए 'सायं प्रातर्होमं करिष्ये' (मैं सायं प्रातः होम करूंगा) ऐसा संकल्प बोला जाता है। सायंकाल और प्रातःकाल दोनों वेलाओं में कर्तव्य दोनों होम एक कर्म है, अतः सम्मिलित दोनों का एक फल है। दोनों के पृथक्-पृथक् फल नहीं हैं। इसी कारण दोनों में द्रव्य और कर्ता एक ही होना चाहिये। एक वेला में अनुष्ठान कर

१—कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही।
दायकालाहृते वापि श्रौतं वैतानिकाग्निषु॥ (पा० स्मृ० १।९७)

२—"दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा" (पा० गृ० १।८।३)

३—किये गये प्रधान याग की पुष्कलता का आपादक (फलप्राचुर्याधायक)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूसरी वेला में अनुष्ठान न करने पर फलप्राप्ति नहीं होती, यह भी ज्ञातव्य है। सपत्नीक पुरुष द्वारा ही यह होम जीवन भर किया जाना चाहिये। न करने पर पुरुष प्रायश्चित्ती होता है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

वैश्वदेव कर्म

पाकयज्ञों में दूसरा स्थान वैश्वदेव का है। 'वैश्वदेव' कर्म का नाम है। इस कर्म में विश्व यानी सभी देवताओं का यजन होता है, इसलिए यह वैश्वदेव कहलाता है। इसी का दूसरा नाम 'पञ्च महायज्ञ' है। शतपथ ब्राह्मण (११।५।५।१) में कहा गया है— (देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, ब्रह्मयज्ञ)। यह भी गृहस्थ का नित्य कर्म है। अन्य शाखाओं में इसका सायंकाल और प्रातःकाल में अनुष्ठान का विधान होने पर भी हमारी माध्यन्दिन शाखा में प्रातःकाल में ही अनुष्ठान का विधान होने से एक ही वेला (प्रातःकाल) में यह अनुष्ठेय है।

पार्वण

छः पुरुषों (पिता, पितामह, प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह) के लिए प्रत्येक अमावास्या में करणीय कर्म पार्वण है। यह भी नित्य है।

अष्टकाश्राद्ध

"अगहन की पूर्णिमा के अनन्तर तीन अष्टका" इस पारस्करगृह्य सूत्र द्वारा हेमन्त और शिशिर की कृष्णपक्षीय चार अष्टमियों में अप (पूए), गोमांस और शाक से इन्द्र, विश्वेदेव, और प्रजापतिरूप पितर के निमित्त किया जानेवाला कर्म 'अष्टकाश्राद्ध' कहलाता है।

'चाहे बैल को एक मुट्ठी भर घास ही क्यों न दे', 'अथवा भाड़ में ही आग क्यों न लगावे', 'किन्तु बिना अष्टका के न रहे' इन आश

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लायनगृह्यसूत्रों द्वारा साग्निक पुरुष को इसे अवश्य करना चाहिये ऐसा बोधन होने पर भी उसमें गोमांसरूप द्रव्य का विधान है और कलियुग में गवालम्भ निषिद्ध है, उसका प्रतिनिधिभूत दूसरा कोई द्रव्य बतलाया नहीं गया ; अतएव हमारी माध्यन्दिन शाखा में उसका लोप ही हो गया है। अन्य शाखावालों का, जिनके लिए मांस का विधान नहीं है, नित्य रूप से ही उसका अनुष्ठान होता है।

मासि श्राद्ध

महीने महीने में किया जानेवाला कर्म मासि श्राद्ध है। क्योंकि "मासि मासि वोऽशनम्*" ऐसी शतपथ की श्रुति है।

श्रवणा कर्म

श्रावण पौर्णमासी से आरंभ कर मार्गशीर्ष की पौर्णमासी तक प्रतिदिन सायंकाल सांपों के लिए किया जानेवाला बलिदान श्रवणा कर्म है, 'अथातः श्रवणाकर्म' (पा० गृ० सूत्र २।१४) इत्यादि से उसका विधान है। यह कर्म एक ही बार करना चाहिये, क्योंकि इसमें काल का बन्धन नहीं है।

शूलगव

शूलगव भी 'अथ शूलगवः' (पा० गृ० ३।८) इत्यादि से विहित एक कर्म है। इसमें गाय रूप द्रव्य का हवन होता है। कलि में गवालम्भन निषिद्ध होने से इसका भी अनुष्ठान नहीं होता। अन्य शाखावालों में तो 'ईशानाय स्थालीपाकं श्रपयित्वा' (आप० गृ० ६।१३) इस सूत्र से गऊ के स्थान पर स्थालीपाक का विधान होने से उसका अनुष्ठान होता है। वह भी एक ही बार किया जाता है।

श्रौत आधान काल और उसके अधिकारी

तदुपरान्त श्रौत सात हविर्यज्ञ होते हैं। इन यज्ञों में तथा आगे

* "महीने महीने में आप लोगों का भोजन हो।"

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निरूपित होने वाले सोमयज्ञों में भी उसी पुरुष का अधिकार है जिसने श्रौत अग्नि का ग्रहण किया हो और सपत्नीक हो। अग्नि का ग्रहण आधान द्वारा ही होता है। और आधान 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ग्रीष्मे राजन्यो वर्षासु वैश्यः' इत्यादि वाक्यों द्वारा तत्-तत् वर्ण के लिए 'अमावास्यायामग्न्याधेयम्' (अमावास्या को अग्न्याधान करना चाहिये। का० श्रौ० सू० ४।७।१) इत्यादि से तत्-तत् काल में विहित कर्मविशेष है। वह है गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि और सभ्याग्नि का सम्पादक तत्-तत् आयतनों में मन्त्रपूर्वक अग्नियों का स्थापन। इस आधान से श्रौत अग्नियों की सिद्धि होती है। 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत' (जिसके पुत्र हो गया हो और केश काले हों ऐसे पुरुष को अग्नियों का आधान करना चाहिये) इत्यादि श्रुति से २५ वर्ष की अवस्था के बाद तथा चालीस वर्ष की अवस्था से पहले सपत्नीक पुरुष को अग्नियों का आधान करना चाहिये। तदनन्तर जीवन भर उनको धारण करना चाहिये। यदि किसी कारण बीच में उनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाय तो पुनः आधान की विधि से फिर अग्नियों का सम्पादन कर उनमें दर्शपौर्णमास आदि का पूर्ववत् अनुष्ठान करना चाहिये।

इस आधान में पिता यदि जीते हों तो उनके अग्निहोत्री होने पर ही पुत्र का अधिकार है। अन्यथा परिवित्ति और परिवेत्ता दोष शास्त्र में कहा गया है। पिता का देहावसान हो जाने के अनन्तर तो वह अधिकारी होता ही है। और वह अधिकार द्वादशाह को सपिण्डनपक्ष में द्वादशाह के दिन ही होता है, अन्यथा द्वितीयादि वर्ष में भी होता है[1]।

अग्निहोत्र में द्रव्य और देवता

इस प्रकार आधान से सिद्ध हुई वैतानिक अग्नियों में अग्निहोत्रादि

---

१ सपिण्डन किन्हीं का द्वादशाह में होता है और किन्हींका आब्दिक श्राद्ध के अनन्तर होता है, इन दोनों पक्षों को लक्ष्य में रखकर यह कहा गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। उन कर्मों में अग्नि के उद्देश्य से सायंकाल और प्रातःकाल किया जानेवाला कर्मविशेष अग्निहोत्र कहलाता है। इसमें दूध आदि बहुत से द्रव्य कहे गये हैं। उनमें मुख्य द्रव्य दुग्ध यज्ञ का अङ्ग कहा गया है; अन्य द्रव्य लपसी, चावल, दही और घी—श्रुति में काम्य कहे गये हैं। लेकिन स्मृति में—

"तैलं दधि पयः सोमो यवागूरोदनं घृतम्।
तण्डुलाः फलमापश्च दश द्रव्याण्यकामतः॥"
(स्मार्तोल्लास)

अर्थात्—तेल, दही, दुग्ध, सोमरस, लपसी, भात, घी, चावल, फल, जल—ये दस द्रव्य कामना के बिना यानी नित्य कहे गये हैं।

इस प्रकार 'अकाम' शब्द के योग से ये नित्यरूप से कहे गये हैं। इसमें भी अग्नि मुख्य देवता है। प्रजापति स्विष्टकृत्स्थानापन्न अङ्ग देवता है। प्रातःकाल सूर्य मुख्य देवता है और प्रजापति अङ्ग देवता है। अग्निहोत्र में अग्नि देवता है, इसीलिए अग्निदेवताकत्व रूप प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर अग्निहोत्र कर्म का नाम है। इसी श्रौत कर्म का अग्निहोत्र नाम है। स्मृतिप्रतिपादित औपासनहोम की अग्निहोत्र संज्ञा नहीं है[1]।

१—यह अग्निहोत्र शब्द तत्प्रख्यन्याय से कर्म का नाम है, यह पूर्वमीमांसा में कहा गया है। वह एक कर्मविशेष 'उद्धरेति यजमानो ब्रूयात्' (का० श्रौ० ४।१३।१) आदि से विहित है, अतः श्रौत ही है। स्मार्त औपासन-होम अग्निहोत्र नहीं है। इसीलिए "अनाहिताग्नेरप्येषः" (का० श्रौ० ४।१।२६) इससे स्मार्त आधानवाले को भी सूत्रकार ने अनाहिताग्नि ही कहा है। "एवं विहितस्यानाहिताग्नेरौपासने श्रपणधर्मा होमश्च।" (आप० श्रौ० १।१०।१७-१८) इस तरह भगवान् आपस्तम्ब ने अनाहिताग्नि (जिसने अग्न्याधान नहीं लिया) के लिए पिण्डपितृयज्ञ का विधान करते हुए उसके लिए औपासन में श्रपणधर्मों का और होम का विधान करते हुए औपासन अग्निमान् भी स्मार्ताग्निवाला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्निहोत्र की बड़ी महिमा गायी गयी है। इसके अकरण में बड़ा प्रायश्चित्त और जन्म की निरर्थकता श्रुति और स्मृतियों में बहुत कही गयी है। आगे कहे जानेवाले दर्शपूर्णमास आदि के विधिपूर्वक अनुष्ठान की सुविधा न होने पर भी अग्निहोत्र का तो घोर विपत्ति में फँसे रहने पर भी पुरुष को अवश्य अनुष्ठान करना चाहिये। उसीसे अन्य यज्ञों के अनुष्ठान का फल हो जाता है, यह भी श्रुतियों और स्मृतियों की बार बार घोषणा है।

इस कर्म का यथासंभव यजमान को स्वयं अनुष्ठान करना चाहिये। स्वयं करने में यजमान यदि असमर्थ हो तो ऋत्विक् के द्वारा भी कराया जा सकता है, "तस्यैतस्याग्निहोत्रस्य यज्ञक्रतोरेक ऋत्विक्" (तै० सं० २।३।६) इस श्रुति में ऋत्विक् भी उसका कर्ता हो सकता है, ऐसा कहा गया है। वह ऋत्विक् अध्वर्यु है।

दर्श-पूर्णमास याग

तदनन्तर दर्श-पूर्णमास नाम के याग अमावास्या और पूर्णिमा को क्रमानुसार करने चाहिये। अमावास्या और पूर्णिमा में अनुष्ठान होने से ही इन कर्मों का 'दर्शपूर्णमास' यह नाम पड़ा है। यद्यपि 'दर्शपूर्णमासौ' यहाँपर द्विवचन ही सर्वत्र पाया जाता है, तथापि पौर्णमासी के दिन अग्नि के लिए आठ कपालों में संस्कृत पुरोडाश का याग, अग्नीषोम के लिए घृत का उपांशुयाग और अग्नीषोम के लिए एकादश कपाल पुरोडाशयाग ये तीन याग होते हैं एवं अमावास्या के दिन अग्नि के लिए पुरोडाशयाग एक, इन्द्र के लिए दधियाग दूसरा और इन्द्र के लिए दुग्ध का याग तीसरा—यों

अनाहिताग्नि ही है, ऐसा अपना अभिप्राय व्यक्त किया है। ग्रंथों में कहीं पर भी अग्निहोत्र शब्द औपासनहोम में प्रयुक्त दिखलाई नहीं देता। अतः वर्तमान समय में स्मार्त अग्निवाले पुरुष में भी जो 'अग्निहोत्री' शब्द का व्यवहार किया जाता है उसमें भ्रान्ति के सिवा और कोई कारण दिखाई नहीं देता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ीन याग होते हैं। दोनों में मिलाकर कुल छः याग होते हैं। एक-एक ाल में कर्तव्य तीनों यागों का एक समुदाय मानकर दो समुदायों के ूप से 'दर्शपूर्णमासौ' इस द्विवचन से उनका अनुवाद होता है। ये छः याग सान्नाय्ययाजी के हैं। यहाँ पर पूर्वोक्त दधि और दुग्ध याग ही सान्नाय्यपदवाच्य हैं। सान्नाय्ययाग में सोमयाजी का ही अधिकार है। अग्न्याधान के अनन्तर जो सोम से यज्ञ कर चुका, उसका सान्नाय्ययाग नित्य है। किन्तु अन्य का "कामादितरः" (का० श्रौ० ४।१।२७) इस सूत्र के अनुसार ऐच्छिक है। निष्कर्ष यह कि जो असोमयाजी सान्नाय्य से यज्ञ करना नहीं चाहता, उसके पौर्णमासी के दिन वे (पूर्वोक्त) ही याग होते हैं। किन्तु हम माध्यन्दिन शाखावालों तथा शाङ्खायन शाखावालों के अमावास्या के दिन आग्नेय के साथ वैष्णव या अग्नीषोमीय आज्यरूप हवि का याग और इन्द्राग्नि के लिए द्वादशकपाल पुरोडाशयाग होते हैं। अन्य शाखावालों में तो जो सान्नाय्य से याग नहीं करता उसके अग्निदेवत्य और इन्द्राग्नि-देवत्य दो ही याग होते हैं। इसमें यद्यपि यह पौर्णमासी तथा अमावास्याकाल में होता है ऐसा कहा गया है, तथापि पूर्णिमा तथा अमावास्या के दिन केवल अग्न्यन्वाधान तथा नियमों का अनुष्ठान होता है, याग तो प्रतिपद् में ही होता है। इसलिए यह कर्म दो दिनों में पूरा होता है। इसमें भी दर्श में दो दिनों में अनुष्ठेयता नित्य है यानी दर्श नियमतः दो दिनों में पूर्ण होता है। किन्तु पौर्णमास सद्यःकाल में हो इसमें विकल्प है, पौर्णमासी को अग्न्यन्वाधान कर नियम आदि का अनुष्ठान कर प्रतिपद् में याग करना चाहिये अथवा प्रतिपद् में ही सब कुछ करे याग होने तक नियमों को धारण करे। पौर्णमासी और अमावास्या इन दो कालों में करणीय पूर्वोक्त छः कर्म एक फल के साधन हैं, अतः यह एक कर्म कहलाता है। इसलिए दोनों में से किसी एक काल में संपाद्य तीन कर्मों का अनुष्ठान करने से फल नहीं मिलता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आधानानन्तर पहले पौर्णमास का तदनन्तर दर्शेष्टि का अनुष्ठान

इसका अनुष्ठान पौर्णमास से आरम्भ होता है। इसलिए आधान के बाद दर्श के आ पड़ने पर भी याग नहीं होता, किन्तु आनेवाली पूर्णिमा के दिन आरम्भ कर उसमें पौर्णमास इष्टि का अनुष्ठान करके तदनन्तर दर्श का अनुष्ठान करना चाहिये। इस कर्म में सपत्नीक यजमान के साथ अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता और अग्नीध्र ये चार ऋत्विक् होते हैं। "तस्माद् दर्शपौर्णमासयोर्यज्ञ-क्रतोश्चत्वार ऋत्विजः" (तै० सं० २।३।६) अर्थात्--इसलिए दर्शपौर्णमास यज्ञक्रतु में चार ऋत्विक् होते हैं।

दर्शपौर्णमास सब इष्टियों की प्रकृति

ये छः याग सब इष्टियों की प्रकृतियाँ हैं। "दर्शपूर्णमासाविष्टीनां प्रकृतिः।" (आप० श्रौ० २४।३।३२) "इष्टिषु दर्शपूर्णमासयोः प्रवृत्तिः स्यात्" (जै० ८।१।११) ऐसा स्पष्टरूप से कहा गया है। श्रुति में तत्तत् फल की प्राप्ति के लिए और तत्-तत् निमित्तों से "ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामः" (तै० सं० २।२।१), "यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत्" (तै० सं० २।२।२) इत्यादि से हजारों इष्टियों का विधान है। उनके समीप तत्-तत् अपेक्षित अंग नहीं पढ़े गये, किन्तु पूर्वोक्त दर्शपूर्णमास नामक छः यागों में सब अंगराशियों को कहकर उन्हींसे तत्-तत् सब विकृतियों में अङ्गों का अतिदेश करना चाहिये, ऐसा कहा गया है। इसी कारण अपेक्षित सब अङ्गों के उपदेश से दर्शपूर्णमास याग प्रकृति कहे जाते हैं, अन्य इष्टियाँ विकृति कहलाती हैं। जहाँ पर सब अङ्गों का उपदेश होता है वह प्रकृति है और जहाँ पर अन्य से अंगों की प्राप्ति होती है वह विकृति है, ऐसा उनके लक्षणों का शास्त्रज्ञ पुरुष उद्घोष करते हैं। प्रकृति से विकृति में धर्मों की प्राप्ति होने पर भी प्रकृति का द्विदिनकाल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विकृति में प्राप्त नहीं होता। क्योंकि "य इष्ट्वा पशुना सोमेन यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा यजेत" (काठ० सं०) इस विशेष विधि से सब विकृतियों के उद्देश्य से सद्यःकालत्व का विधान है।

दर्शपूर्णमास याग के पदार्थ

यद्यपि दर्शपूर्णमास में बहुत से पदार्थ कर्तव्य हैं, उन सबके निरूपण के लिए विस्तार की आवश्यकता है, इसलिए मुख्य-मुख्य कुछ पदार्थों का निरूपण किया जाता है। पौर्णमासी के दिन पहले अग्न्युद्धरण[1], अग्न्यन्वाधान[2], ब्रह्मा का वरण, प्रणीताप्रणयन[3], परिस्तरण[4], पात्रासादन, सूप और अग्निहोत्रहवणी[5] को तपाना, अग्निहोत्रहवणी में शकट से अथवा इडापात्री[6] से हवि का ग्रहण आदि, पवित्रकरण[7] आदि, पात्र और हवि का प्रोक्षण, हवि का कूटने आदि से लेकर बीनने

---

(१) प्रणयन के लिए गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय और दक्षिणाग्नि को पृथक् करना अग्न्युद्धरण है।

(२) गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि में 'ममाग्ने वर्चः' इस मन्त्र से छः समिधों का आधानरूप कर्म अग्न्यन्वाधान है।

(३) चमस में संगृहीत जल प्रणीता कहे जाते हैं, उनका प्रणयन यानी अपने स्थान पर स्थापन प्रणीताप्रणयन है।

(४) अग्नि का चारों ओर से कुशों से आच्छादन परिस्तरण है।

(५) जिसके द्वारा अग्निहोत्र-हवन किया जाता है वह अग्निहोत्र-हवणी है।

(६) वारण काठ (काले सीसम) का बनाया हुआ अरत्नि (एक मुट्ठी बन्ध हाथ) लम्बा दो अंगुल की परिधिवाला बीच में संकुचित चार अंगुल वेट (दंड) वाला पात्र इडा का आधार होने से 'इडापात्री' कहलाता है।

(७) जिसके भीतर गर्भ न हो प्रादेशमात्र (अंगूठे के सिरे से लेकर तर्जनी के सिरे तक की नापवाले) अग्रभाग सहित कुश के द्विदल को सर्वत्र पवित्र जानना चाहिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर्यन्त संस्कार, उसको पीसना, कपालों को विधिपूर्वक रखना[1], उपसर्जनियों[2] का तथा हवि का अधिश्रयण[3], आप्त्यों[4] के लिए अंगुलियों के प्रक्षालन का जल पहुँचाना, वेदी बनाना आदि, स्तम्बयजु[5] का हरण आदि, स्रुव, जुहू[6], उपभृत्[7], ध्रुवा[8] आदि यज्ञपात्रों

---

(१) पुरोडाश को पकाने के लिए मिट्टी से बनाये आग में पकाये हुए पात्र कपाल कहलाते हैं। वे दो अंगुल ऊँचे होते हैं। जिस पुरोडाश में जितने कपालों का विधान हो वे सब मिलाकर गार्हपत्य अग्नि के पीछे गार्हपत्य अग्निशाला के भीतर पश्चिम भाग में रखे जानेवाले तीन अंगुल गोलाईवाले छः अंगुल विस्तृत होते हैं।

(२) आटा सानने के लिए गरम जल उपसर्जनी है।

(३) चूल्हे पर चढ़ाना।

(४) आप्त्य नामक तीन देवताओं के लिए पिष्टलिप्त अंगुलियों के धोने का जल प्रापण।

(५) दर्शपूर्णमास आदि में यजुर्वेद के मन्त्रों से काटा हुआ कुश स्तम्बयजु कहलाता है।

(६) पलाश के काठ से बनायी गयी हाथ भर की हंस के मुँह की तरह प्रणालिका वाली स्रुक् जुहू कही जाती है। 'हूयतेऽनया सा जुहूः' जिससे होम किया जाता है वह जुहू है ऐसी व्युत्पत्ति है।

(७) पीपल के काठ की बनी हुई जुहू के तुल्य (उप—समीप में, भ्रियते—धारण की जाती है इस व्युत्पत्ति से) अध्वर्यु द्वारा होम के लिए धारण की गयी दाहिने हाथ की जुहू के निकट धारण करने से उपभृत् कही जाती है।

(८) विकङ्कत (बंज) काठ से निर्मित जुहू के तुल्य यज्ञ की समाप्ति तक वेदी में विद्यमान रहने के कारण स्थिरता दिखाई देने से जो ध्रुवति—प्रचलित नहीं होती यानी अटल रहती है वह ध्रुवा है।

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का सम्मार्जन, पत्नीसन्नहन[1], इध्म[2], वेदी और कुशों का प्रोक्षण, प्रस्तर (कुशमुष्टि) का ग्रहण, वेदी का स्तरण (कुशों से अच्छादन), परिधियों[3] का स्थापन, इध्मों का आधान, विधृतियों[4] का स्थापन, जुहू आदि की वेदी में स्थापना आदि, पन्द्रह साम-धेनियों[5] का अनुवचन (पठन), अग्नि का संमार्जन, आघार, होताओं का वरण आदि, पांचप्रयाज[6], दो आज्यभाग[7], प्रधान याग[8], स्विष्टकृत्[9],

---

(१) मूँज की रस्सी से बनाई हुयी पत्नी के बन्धन के लिए जो एक प्रकार की रस्सी है उसे पत्नीसंनहन कहते हैं।

(२) पलाश आदि वृक्षों की अरत्नि (मुट्ठ बँधे हाथ) की बराबर अठारह समिधें इध्म हैं (छन्दो० प० ८।१९।२०)।

(३) आहवनीय अग्नि के चारों ओर जो निधीयन्ते—रखी जाती हैं वे परिधियाँ है—पलाश आदि की समिधें, जिनका परिमाण १ हाथ का होता है।

(४) प्रस्तर (कुशमुष्टि) आदि का जिनपर विशेष रूप से धारण होता है, वे कुश विधृती हैं।

(५) जिन ऋचाओं के द्वारा अग्नि खूब दीप्त की जाती है वे ग्यारह सामधेनी ऋचाएँ हैं "प्र वो वाजा अमिद्यव" इत्यादि (तै० ब्रा० ३।५।२१)। उनका पाठ करना सामधेन्यनुवचन है (श० ब्रा० १।३।१३)।

(६) जिनसे देवताओं का प्रकृष्ट रूप से यजन होता है वे प्रयाज कहलाते हैं।

(७) आज्य (घृत) जिनका भाग है वे आज्यभाग हैं—अग्नीषोम। उनका सम्बन्ध होने से तत्सम्बन्धी होम भी आज्यभाग कहलाते हैं।

(८) फल के उद्देश्य से विहित देवता प्रधान देवता है, उसके लिए याग प्रधान याग है।

(९) प्रधान याग का जो उत्तम इष्ट करता है वह स्विष्टकृत् है अर्थात् किये गये प्रधान कर्म की पुष्कलता का आपादक।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राशित्रावदान[1], इडावदान आदि, भागप्राशन, अन्वाहार्य[2] दक्षिणा, तीन अनुयाज[3], व्यूहन[4], सूक्त- वाक[5], शंयुवाक[6], पत्नीसंयाज[7], दक्षिणाग्निहोम, बर्हिर्होम, प्रणीताविमोक आदि, विष्णुक्रमादि[8] यजमान कर्म, व्रतविसर्ग, ब्राह्मणभोजन आदि।

ये दर्शपूर्णमास जीवनभर करने चाहिये। यदि जीवनभर करने की शक्ति न हो तो तीस वर्ष तक करके बन्द कर दे। दाक्षायण यज्ञ करनेवाले को तो पन्द्रह वर्ष तक दाक्षायण यज्ञ करना चाहिये। दाक्षायण यज्ञ एक-एक प्रयोग में दो-दो वार किया जानेवाला एक प्रकार का यागगुणविकृतिभूत दर्शपूर्णमासयाग ही है, अन्य कर्म नहीं है।

---

(६) प्राशित्र है ब्रह्मा का भाग। उसका अवदान यानी ग्रहण प्राशित्रावदान है।

(७) अन्वाहरति—यज्ञ में हुए दोषों को जिससे दूर करता है वह अन्वाहार्य है—ऋत्विक् के भोजन योग्य भात (देखिये शत० ब्रा० साय० भाष्य १।३।३।५)।

(८) अनु अर्थात् प्रधान याग के अनन्तर जिनसे यजन किया जाता है, इस व्युत्पत्ति से होता द्वारा पढ़े जानेवाले याज्या-मन्त्र अनुयाज हैं।

(९) जुहू का पूर्व में और उपभृत् का पश्चिम में हटाना व्यूहन है।

(१) "इदं द्यावापृथिवी (का० हौ० प० १।१३) इस अनुवाक से प्रतिपादनीय मन्त्रविशेष सूक्तवाक है।

(२) 'तच्छंयोरवृणीमहे' (का० हौ० प० १।१३) इस मंत्र में शंयु नामक बृहस्पति के पुत्र की स्तुति है और 'शंयु' पद भी इसके अन्तर्गत है, इसलिए इसका नाम शंयुवाक है।

(३) पत्नीरूप देवतावाले दर्शपूर्णमास के अङ्गभूत चार याग पत्नीसंयाज कहे जाते हैं।

(४) विष्णुचरण समझकर भूमि पर अपने चरणों को रखना विष्णुक्रम है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसी से यह सिद्ध हुआ कि दाक्षायण यज्ञ के अनुष्ठानपक्ष में दर्श-पूर्णमास यागों का अनुष्ठान नहीं होता। (देखिये का० श्रौ ४।४।३)।

चातुर्मास्य याग

तदुपरान्त चातुर्मास्य कर्म होते हैं। चार महीनों में अनुष्ठान होने के कारण कर्म चातुर्मास्य कहलाते हैं। इनमें चार पर्व होते हैं—वैश्वदेव[1], वरुणप्रघास[2], साकमेध[3] और शुनासीरीय[4]। उनमें प्रथम पर्व का फाल्गुन की पूर्णिमा में अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर चार महीने बीतने पर आषाढ़ की पूर्णिमा को दूसरा पर्व, तदनन्तर चार महीने बीतने पर कार्तिक की पूर्णिमा को तीसरा पर्व, तदुपरान्त चार महीने बीतने पर फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को चौथा पर्व करना चाहिये। इसी तरह पुनः पुनः आवृत्ति करनी चाहिये।

पहला वैश्वदेव पर्व

इस प्रथम पर्व में अग्निदेवताका अष्टाकपाल पुरोडाश, सोम का चरु, सविता का अष्टाकपाल या द्वादशकपाल पुरोडाश, सरस्वती का चरु, पूषा का आटे का चरु, केवल मरुतों का या स्वतवद्गुणविशिष्ट मरुतों का सप्तकपाल पुरोडाश, विश्वेदेव के लिए पयस्या (फटे हुए दूध का तरल अंश), द्यावापृथिवी का एककपाल पुरोडाश ये आठ हवि होते हैं। इन यागों के दर्शपूर्णमास प्रकृति हैं, इसलिए ये पृथक् धर्मवाले

१—जिस पर्व को विश्वेदेवों ने देखा वह वैश्वदेव पर्व है।

२—जिन हवियों में उत्तम भक्ष्य रहते हैं वे प्रघास हैं। वरुण के लिए प्रघास वरुणप्रघास हैं। अथवा वरुण के घातरूप कर्म का विनाश करनेवाले वरुणप्रघास हैं।

३—जिन हवियों के साथ देवता बढ़ते हैं वे साकमेध हैं।

४—शुन अर्थात् वायु, सीर यानी आदित्य वे देवता जिसके हैं वह शुनासीरीय पर्व है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं कहे जाते हैं। केवल प्रयाज और अनुयाजों में "नवप्रयाजं नवानुयाजम्" इस सूत्र से नवत्व 'त्रीणि समिष्टयजूंषि' और वाजि देवतावाला याग यह विशेष है। इसी वैश्वदेव पर्व के धर्मों की आगे के पर्वों में अनुवृत्ति होती है।

उसमें भी जो विश्वेदेवसम्बन्धी आमिक्षा याग होता है वह अन्य आमिक्षा यागों की प्रकृति है। इसी तरह द्यावा-पृथिवीय का एककपाल भी सब एककपालों की प्रकृति है ऐसा आपस्तम्ब का मत है (देखिये आपतम्बश्रौतसूत्र २४।१।१)। कर्काचार्य का भी यही मत है (देखिये का० श्रौ० सूत्र ४।६।४)। जैमिनीय शाखावालों का भी ऐसा ही आशय है (जै० ७।१।२३)। परन्तु कर्काचार्य आमिक्षायाग को दाक्षायणान्तर्गत आमिक्षायाग का विकृति मानते हैं। (देखिये का० श्रौ० सू० ५।१।१८)। इसमें ऋत्विक् दर्शपूर्णमास के अनुसार होते हैं।

वरुणप्रघास नामक दूसरा पर्व

तदनन्तर वरुणप्रधास होते हैं। उनका आषाढ़ की पूर्णिमा को अनुष्ठान करना चाहिये। वैश्वदेव में जितने हविर्द्रव्य कहे गये हैं, उनमें से पहले के पांच हविर्द्रव्यों का इसमें भी सम्पादन करना चाहिये। उनके अतिरिक्त चार हविर्द्रव्य और होते हैं। वे हैं इन्द्राग्निदेवत्य द्वादशकपाल पुरोडाश, वरुण के लिए आमिक्षा, मरुत् के लिए आमिक्षा, प्रजापति (ब्रह्मा) के लिए एककपाल पुरोड़ाश।

इसमें दो बेदियाँ होती हैं--दक्षिण वेदी और उत्तर वेदी। ऋत्विक वैश्वदेव पर्व के अनुसार ही होते हैं। एक प्रतिप्रस्थाता अधिक होता है। वही दक्षिण वेदी में होनेवाले कर्मों को करता है। इस प्रकार आग्नेय आदि आठ साङ्ग हविर्द्रव्यों का उत्तर वेदी में अध्वर्यु द्वारा होम होता है। केवल मरुत् की आमिक्षा का दक्षिण वेदी में प्रतिप्रस्थाता होम करता है। जिन जिन अङ्गों का अध्वर्यु द्वारा उत्तर वेदी में अनुष्ठान होता है उन सबका प्रतिप्रस्थाता दक्षिण वेदी में अनुष्ठान करता है

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रणीता; पत्नीसंनहन, अग्निमन्थन, आश्रुत, प्रत्याश्रुत, प्रैष, यजमान-वाचन, होतृषदन, वरण, प्राशित्रा, अङ्गुलिपर्वाञ्जन, अवान्तरेडाभाग, अपराग्निहोम और अवभृथ प्रतिप्रस्थाता न करे" इस का० श्रौ० सूत्र से (५।४।३३) प्रणीताप्रणयनादि से लेकर अवभृथान्त कर्म प्रतिप्रस्थातार को नहीं करने चाहिये। इस पर्व में और साकमेधपर्व में उत्तरवेदी और अग्निप्रणयन अधिक है।

इसी प्रकार करम्भ[1] पात्रों का निर्माण और उनका होम इस पर्व में अधिक है। पूर्व दिन चतुर्दशी को जौ के आटे से गोल चार करम्भ पात्र अध्वर्यु बनावे, पूर्णिमा को भेड़ अध्वर्यु बनावे और भेड़ी प्रतिप्रस्थाता बनावे। पत्नी उन्हें सूप में रख कर अपने सिर पर उठाकर दक्षिणाग्नि में उनका हवन करे। दक्षिणाग्नि में ही भेड़ी का होम होता है, जिसका कर्ता प्रतिप्रस्थाता है। भेड़ का होम उत्तर वेदी में अध्वर्यु द्वारा होता है।

इसमें कुछ विशिष्टता श्रुतिसिद्ध है (देखिये शतपथब्राह्मण ५।२।२०, तैत्तिरीयब्राह्मण १।६।५, का० श्रौ० सूत्र) करम्भ पात्रों का होम करने के लिए आ रही पत्नी को देखकर प्रतिप्रस्थाता पूछे—'किसके साथ विचरती हो?' जिसके साथ विवाह हुआ है उस पति के सिवा जार भी यदि तुम्हारे हों, तो उन्हें कहो, यह प्रश्न का आशय है। यदि कोई हों, तो उन्हें अवश्य बतलावे। साध्वी स्त्रियों का भी कदाचित् मानसिक दोष हो सकता है, इस अभिप्राय से यह कथन है, वस्तुतः उनके जार का अस्तित्व अभिप्रेत नहीं है। इस पर्व में अवभृथ में भी एक विशेषता है। वह यह कि इसमें सौमिक धर्मों की प्राप्ति होती है (देखिए कात्यायनश्रौ० सू० ४।३।५)। परन्तु वे तूष्णीं होते हैं, आसन, मन्त्र आदि नहीं होते (देखिए श० ब्रा० २।५।२।४६)। इसी प्रकार वरुण की आमिक्षा के खुरचन के साथ अवभृथ-स्थान में जाकर

१—दीये के समान जौ के आटे से बनाये गये पात्र करम्भ पात्र कहलाते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हविर्द्रव्य पूर्ववत् होते हैं। इनके अतिरिक्त—शुनासीर अर्थात् वायु और आदित्य के लिए द्वादश कपाल पुरोडाश, वायु के लिए दूध या लपसी, सूर्य के लिए एककपाल पुरोडाश है और दक्षिणा छः बैलों से युक्त हल या बड़े बड़े दो बैल। सौर की दक्षिणा सफेद घोड़ा या गऊ है।

चातुर्मास्य याग में दो पक्ष

चातुर्मास्ययागमें दो पक्ष हैं, उत्सर्गपक्ष और जीवनपर्यन्त पक्ष। एक बार चातुर्मास्यों से यज्ञ कर तदुपरान्त जो पशु, सोम आदि से यज्ञ करता है, फिर चातुर्मास्यों से यज्ञ नहीं करता वह उत्सर्गपक्ष है। चातुर्मास्यों से ही प्रतिवर्ष जीवन भर यजन करना चाहिए, यह यावज्जीवन पक्ष है। उत्सर्गपक्ष में साकमेध पर्व के बाद फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा में शुनासीरीय से यजन कर आगामिनी पौर्णमासी में अग्निष्टोम या पशु आदि का अनुष्ठान करना चाहिए। किन्तु यावज्जीवन पक्ष में फाल्गुन की चतुर्दशी को शुनासीरीय से यजन कर पूर्णिमा को वैश्वदेव पर्व करना चाहिए। तदनन्तर पूर्व की नाईं वरुणप्रघास आदि का अनुष्ठान करना चाहिए। इसी प्रकार यावज्जीवन करना चाहिये।

चातुमास्यों के तीन भेद

चातुर्मास्य तीन प्रकार के होते हैं—ऐष्टिक, पाशुक और सौमिक। उनमें से पहले जिनके विषय में कह आये हैं वे ऐष्टिक हैं। ऐष्टिक तीन तरह के होते हैं—सांवत्सरिक (एक वर्ष में पूरे होनेवाले), पाञ्चाहिक और ऐकाहिक। सांवत्सरिकों का पहले निरूपण किया जा चुका है। जो पांच ही दिनों में पूर्ण हो जाते हैं वे पाञ्चाहिक कहे जाते हैं। उनमें देवता आदि सब पहले के तुल्य ही (सांवत्सरिक के समान ही) होते हैं। वे ही जब एक ही दिन में अनुष्ठित होते हैं तब उनकी ऐकाहिक संज्ञा होती है। उनमें भी उतने ही देवता और वे ही हविर्द्रव्य होते हैं। परन्तु सब पर्वों के एक काल में होने से जि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ङ्गों का अनुष्ठान संभव हो उनका तन्त्र से अनुष्ठान होता है, किन्तु जनका होना संभव न हो उनकी केवल आवृत्ति ही होती है। उनमें बड़ा होने के कारण वरुणप्रघास में ही अङ्गों की तन्त्रता होती है। यदि पशुयुक्त होते हैं तो पाशुक कहलाते हैं। उनमें पशु-तन्त्र की ही धानता रहती है। अतः एकादश प्रयाज और एकादश अनुयाज भी ते हैं। पहले पर्व में वैश्वदेव पशु, दूसरे में वरुणदेवत्य पशु, तीसरे महेन्द्रदेवताक पशु और चौथे में वायु-आदित्यदेवत्य पशु होता है। न पशुओं का इष्टिसम्बन्धी हविर्द्रव्य के साथ समानतन्त्र से अनुष्ठान ोता है, ऐसा एक पक्ष है। पृथक् पृथक् पर्व के आरंभ में पृथक् तन्त्र अनुष्ठान कर तदनन्तर ऐष्टिक कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये, सा दूसरा पक्ष है। अथवा पर्व के अन्त में पृथक् तन्त्र से अनुष्ठान रे, ऐसा तीसरा भी पक्ष है। परन्तु सौमिकों में वैश्वदेव पर्व के बदले ग्निष्टोम साम से समाप्त होने वाला प्रथम दिन होता है। वरुणप्रघास स्थान में अग्निष्टोमसाम से समाप्त होनेवाला अथवा उक्थ्य साम से माप्त होनेवाला प्रथम दिन होता है। साकमेधपर्व के स्थान में अग्नि-टोम साम से समाप्त होनेवाला अथवा षोडशी नामक साम से माप्त होनेवाला प्रथम दिन, उक्थ्य से समाप्त होनेवाला द्वितीय दिन और अतिरात्र साम से समाप्त होनेवाला तृतीय दिन होता है। ुनासीरीय के स्थान पर ज्योतिष्टोम होता है। सात दिनों में क्रम से विश्वेदेवदेवत्य, वरुणदेवत्य, मरुद्देवत्य, अग्निदेवत्य, इन्द्राग्नि-देवत्य, ऐकादशिन और वायुदेवत्य पशु होते हैं। प्रत्येक पर्व में अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) होता है।

निरुढपशुबन्ध

तदुपरान्त निरूढपशुबन्ध होता है। उसे प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में करना चाहिये। इसका उत्तरायण और दक्षिणायन के आरंभ में दो बार विकल्प से अनुष्ठान कहा गया है। इसमें हवनीय द्रव्य छाग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(बकरा) है। वह भी साक्षात् नहीं, किन्तु उसकी वपा। वपा पशु के आमाशय के ऊपर उसे ढँककर रहनेवाला बहुत महीन सफेद वस्त्र के आकार का एक अवयव (झिल्ली) है। जीभ, छाती, बायें हाथ की पसली, 'नड़क' नाम की खोखली अस्थि, जो कन्धे के नीचे कुहनी तक नलाकार रहती है, दोनों पसलियां, यकृत्, दो वृक्क (कोख में स्थित गोले), गुदा का मध्य भाग, दाहिना कटिभाग ये जुहूपात्र में रखे जाने-वाले हवनीय द्रव्य हैं। बाँई भुजा, बाँई कमर और गुदा का तृतीयांश ये उपभृत् सम्बन्धी यानी उपभृत् (यज्ञपात्र) में सञ्चित करने के द्रव्य हैं। यहाँ इन्द्राग्नि, सूर्य या प्रजापति वैकल्पिक देवता हैं। इसमें पूर्वोक्त पांच ऋत्विजों के साथ मैत्रावरुण छठा ऋत्विक् है। यद्यपि सभी सूत्रकारों ने यहीं पर प्रयाजादि अङ्ग कहे हैं, तथापि श्रुति के अनुसार ज्योतिष्टोमाङ्गभूत अग्नीषोमीय याग ही इस याग की प्रकृति है। पशु बांधने के लिए गाड़ने योग्य एक तरह का काष्ठ यूप है, वह खैर या बेल का बनाना चाहिये। वह तीन अरत्नि (मुट्ठी बँधा हाथ यानी कुहनी से लेकर मुट्ठी बंधी कनिष्ठिका अंगुलि तक) या चार अरत्नि का होता है, उसकी छाल छिली होती है और वह अष्टकोण (आठ कोनेवाला) होता है। ऋत्विजों से अन्य जिस किसी से पशु का संज्ञपन[1] कराकर उससे सर्वप्रथम वपा निकाल कर उसे दो वपाश्रपणियों (वपा पकाने के पात्रों) में आहवनीय अग्नि में पकाकर एक बार अवदानकर निश्शेष (सम्पूर्णतः) वपा का हवन कर तदुपरान्त हृदय आदि अवयवों का अवदान कर शामित्र नाम की अग्नि में जब वे पक रहे हो तब पशुयाग का जो देवता हो उस देवता के पुरोडाश का निरूपण कर उससे उस देवता के लिए याग करने पर फिर पकाये हुए हविर्द्रव्यों को लेकर उन्हें स्वधिति (छूरी) से जुहू में काट कर आठ हृदयादि अङ्गों का उस देवता के लिए हवन कर, तदनन्तर तीन अङ्गों

१—यज्ञसम्बन्धी पशु का शस्त्रप्रहार आदि के बिना मुखबन्धन द्वारा जो प्राणों से वियोग कराना है, वह पशु का संज्ञपन कहलाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से स्विष्टकृत् आहुति देकर अनुयाज आदि का अनुष्ठान करे। इसमें ग्यारह अनुयाज और उतने ही प्रयाज होते हैं। इष्टियों में हवि का आसादन करने के अनन्तर प्रयाजों का यजन होता है। किन्तु पशुयाग में पशु जब यूप के समीप खड़ा रहता है तभी दस प्रयाजों का यजन होता है। लेकिन ग्यारहवें प्रयाज का यजन पशु के हनन के अनन्तर ही होता है। इष्टि से पशुयाग में यह अन्तर है। इसमें दक्षिणा गौ आदि पशु नियत है, धेनु अथवा वर (श्रेष्ठ) वैकल्पिक दक्षिणा है।

इस याग की प्रकृति अग्नीषोमीय याग है, यह पहले कहा जा चुका है। यही अग्नीषोमीय पशुयाग सब काम्य यज्ञों और सवनीय पशु का प्रकृतिरूप है। सोमयाग में जिस दिन सोमरस को गारकर ग्रह, चमस आदि पात्रों में लेकर उसका अनुष्ठान किया जाता है, उसी दिन अनुष्ठेय रूप से विहित पशु 'सवनीय' कहा जाता है और वह अग्निष्टोमसंस्थावाले ज्योतिष्टोम में एक होता है, उक्थ्यसंस्था-वाले ज्योतिष्टोम में दो, षोडशी में, तीन, अतिरात्र में चार और वाजपेय में पाँच होते हैं। परन्तु सत्र आदि में इससे भी अधिक बढ़ते हैं। इस (निरूढपशुबन्ध) के साथ ज्योतिष्टोम में पश्वेकादशिनी का भी विकल्प है। सवनीय पशु तो एकादशिनी का प्रकृति है। ऐकादशिन वाजपेय के अङ्गभूत प्राजापत्य पशुगण तथा अन्य पशुगणों के प्रकृति हैं। पशुयाग अग्नीषोमीय सब पशुयागों का प्रकृति होने पर भी सान्नाय्य याग का विकृतिभूत है। वहाँ भी वह पयोयाग का ही विकृति है।

आग्रयणेष्टि

आग्रयणेष्टि का निर्वचन यों है—अग्रे अर्थात् नवीन अन्नों की उत्पत्ति के अनन्तर, जिसका अयन यानी अनुष्ठान हो वह 'आग्रयण' है। इसका अनुष्ठान शरत् और वसन्त में करना चाहिए। इसमें हवनीय द्रव्य पुरोडाश और चरु हैं। इन्द्राग्नि के लिए पुरोडाश और चावा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथिवी के लिए चरु है। विश्वेदेव का चरु जौ का होता है। उसे दूध में पकाना चाहिये। नये धान और जौ इस में प्रधान द्रव्य हैं। इसमें दक्षिणा है—टूटने पर मरम्मत किया हुआ रथ या रेशमी वस्त्र, या मधुपर्क अथवा वर्षा में धारण किया गया वस्त्र। यह इष्टि नित्य है। इष्टि से यजन कर अग्निहोत्री को नवीन अन्न खाना चाहिये। जिसने श्रौत अग्नि का आधान नहीं किया, ऐसे औपासनिक के (स्मार्ताग्निवान् के) लिए भी गृह्यसूत्रों में उक्त विधि से यह कर्म कर्तव्य कहा गया है। धानों का आग्रयण कर के यवों के आग्रयण तक धानों से ही सब याग करने चाहिये। इसी तरह यवों का आग्रयण कर व्रीह्याग्रयण तक यवों से ही सब याग करने चाहिये। नवान्नेष्टि भी इसका नाम है।

सौत्रामणीयाग

सौत्रामणी इन्द्रसम्बन्धी पशुयाग है। इसकी व्युत्पत्ति है—'सुत्राम्णः इयं सौत्रामणी।' वह दो प्रकार का है—स्वतन्त्र और दूसरे यागों का अङ्गभूत। चयन के अनन्तर चयनाङ्गरूप से अनुष्ठीयमान सौत्रामणी अङ्गभूत है और स्वतन्त्ररूप से विहित प्रधानभूत है। वह नित्य, काम्य और नैमित्तिक (किसी निमित्त से होनेवाली) भेद से तीन तरह की है। उनमें फल के उद्देश्य के बिना जो विहित है वह नित्य है, वह हविर्यज्ञ के अन्तर्गत है। उसी का यदि ऋद्धिरूप फल के उद्देश्य से विधान किया जाय तो वह काम्य है। सोम के वमन आदि निमित्त उत्पन्न होने पर तदनन्तर अनुष्ठेयरूप से विहित सौत्रामणी नैमित्तिक है। स्वतन्त्र सौत्रामणीयाग में ब्राह्मण का ही अधिकार है। अङ्गभूत सौत्रामणी के क्षत्रिय-वैश्य भी अधिकारी हैं। उसमें तीन पशु होते हैं—बकरा, भेड़ और वृषभ। देवता हैं—क्रमशः दो अश्विनीकुमार, सरस्वती और इन्द्र। इसी पशुसमूह की 'सौत्रामणी' संज्ञा है। दूसरी शाखाओं में इन्द्र के स्थान पर 'इन्द्र'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

GNCA
Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri
Acc. No. 94-50688
294.538
GAU

त्रामा' देवता है। इसी तीन पशुवाली सौत्रामणी को आपस्तम्ब नित्या हते हैं (देखिये आ० प्र० १६)। दूसरी भी किसी कौकिल सौत्रा-णी, जिसमें पाँच पशु होते हैं, का विधान किया गया है। उसमें हला पशु इन्द्र का है और अन्तिम वयोधा का। इसी कौकिल सौत्रा-णी को हमारे आचार्यों ने मुख्य माना है। इससे यह प्रतीत होता है कि जहाँ आपस्तम्बों की तीन पशुवाली सौत्रामणी नित्य है वहीं माध्यन्दिनियों की पाँच पशुवाली सौत्रामणी नित्य है। उसमें पहले आदित्य का चरु, तदनन्तर इन्द्र का पशु होता है। अथवा विपरीतरूप से भी इनका अनुष्ठान होता है। यह याग चार दिनों में अनुष्ठित होता है। इसमें अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, अग्नीत्, प्रतिप्रस्थाता और मैत्रावरुण छः ऋत्विक् होते हैं। इसमें तीन पयोग्रह और तीन ही सुराग्रह होते हैं। ग्रहों के देवता हैं—दो अश्विनीकुमार, सरस्वती, इन्द्र और त्रामा। इसमें होम के लिए प्रयोग के मध्य में सुरा भी बनानी चाहिये।

उसमें पहले दिन द्वादशी को प्रातःकाल अग्निहोत्र-हवन करके अदिति देवता का चरु अनुष्ठेय है। उसका इन्द्रसम्बन्धी पशु के साथ क्रम में विकल्प है—इन्द्रसम्बन्धी पशु का अनुष्ठान कर चरुका अनुष्ठान करना चाहिये या चरुका अनुष्ठान कर इन्द्रसम्बन्धी पशुका अनुष्ठान करना चाहिये। इस चरु का अन्त में भी अनुष्ठान करना चाहिये। तीन पशुओं के स्थान से दक्षिण की ओर इन्द्र-सम्बन्धी पशुका अनुष्ठान होता है।

यद्यपि इस सौत्रामणी में दुग्धग्रहण के साथ मद्यग्रहण का विधान है, तथापि स्मृति, पुराण आदि में मद्यग्रहण-मात्र का कलियुग में सर्वथा निषेध है, 'सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः', 'सौत्रामण्यां सुराग्रहः' इत्यादि से निर्णयसिन्धुकार आदि निबन्धकारों ने भी तत्तत् वचनों का उल्लेख करते हुए सुराग्रहणका निषेध किया है तथा सेतुबन्ध से लेकर हिमालय तक शिष्ट उसका अनुष्ठान भी नहीं करते, अतः निन्द्य समझ कर ही उसका अनुष्ठान प्रकार यद्यपि सूत्रकार द्वारा प्रति-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पादित है तथापि हमारा उपकारी नहीं है यह सोचकर उसके निर्माण की प्रणाली और अनुष्ठानविधि का यहां पर विवेचन नहीं किया गया। परन्तु सौत्रामणी का अनुष्ठान 'पयो ग्रहा वा स्युः' (देखिये आपस्तम्बश्रौतसूत्र १६।२।२३) यों आपस्तम्ब द्वारा सुराग्रहणों के विकल्प में पयोग्रहों का विधान होने से आपस्तम्बानुयायी ही कर सकते हैं, उसमें उनका अधिकार है ही। वैसे ही आपस्तम्बानुयायी करते भी हैं। हम लोग भी 'अनुक्तमन्यतो ग्राह्यम्' अर्थात् जो अपनी शाखा में नहीं कहा गया उसका अन्य शाखा से ग्रहण करना चाहिये, इस न्याय से उसी पक्ष का (पयोग्रहपक्ष का) अवलम्बन कर सौत्रामणी का अनुष्ठान करते हैं। इसी प्रकार वाजपेय में भी, यद्यपि सुराग्रहण का सूत्रकार ने विधान किया है, तथापि इसी वाक्य से कलियुग में सुराग्रहण निषेध होने के कारण उसका अनुष्ठान उचित नहीं है, क्योंकि 'सौत्रामण्यां सुराग्रहः' इस वाक्य में सुराग्रहण में सौत्रामणी का सम्बन्ध उद्देश्य विशेषण होने ग्रहैकत्वन्याय[1] से विवक्षा न होने के कारण सुराग्रहण मात्र का निषेध प्रतीत होता है। सौत्रामणी में किसी भी सूत्रकार ने विकल्प द्रव्य नहीं कहा है। कलियुग में उसका किसी को अधिकार ही नहीं है, ऐसा निर्णयसिन्धुकार का आशय है। उन्होंने कहा है—"सौत्रामण्यान्तु पयोग्रहा वा स्युः' इस आपस्तम्बीय वचन से वैकल्पिक पयोग्रहों से भी अधिकार है। वाजपेययाग में तो उस की प्राप्ति में कोई प्रमाण न होने के कारण सोम और सुरा का साथ-साथ त्याग होने से अंशतः सुरा द्रव्य रहने से उसके प्रत्यक्ष होने से याग का नाम है। सुरा के बिना संज्ञा नहीं बनेगी, अतः कलि में अधिकार नहीं है, यह हमें युक्तियुक्त जँचता है।" किन्तु याज्ञिक लोग तांबे के बर्तन में रखा हुआ गोदुग्ध सुरातुल्य कहा गया है, इसलिए तांबे के पात्र में

---

१ जैसे 'गृहं सम्मार्ष्टि' यहाँ एकत्व विवक्षित नहीं, केवल प्रातिपदिक ही विवक्षित होता है, उसी तरह यहाँ भी समझना चाहिये। यही ग्रहैकत्वन्याय का अर्थ है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गोदुग्ध लेकर उसे सुरा का प्रतिनिधि मानकर उससे युक्त सोम ग्रह से वाजपेय यज्ञ करते हैं।

सौत्रामणी के अङ्गभूत पशुपुरोडाश याग में अन्य यागों के पुरोडाश याग के तुल्य पशुयागीय देवता नहीं रहते, किन्तु इन्द्र, वरुण और सविता देवता रहते हैं। इस पाँच पशुवाली सौत्रामणी को आपस्तम्ब ने कौकिली सौत्रामणी कहा है। दूसरी भी एक सौत्रामणी चरण-सौत्रामणी नाम की है। वह राजसूय यज्ञ की अङ्गभूत है। उसमें तीन पशु होते हैं (देखिए का० श्रौ० १५।१०)। शेष सब समान है।

सोमयाग का निरूपण

अग्निष्टोम

इस सोमयाग के अनुष्ठान में दो पक्ष हैं। जब सोमयाग करने की इच्छा हो, तब किसी वसन्त में अग्नियों का आधान कर उसके बाद ही सोम से यजन कर, तदुपरान्त दर्शपूर्णमास आदि का अनुष्ठान करे—यह एक पक्ष है। अग्नि के आधान के बाद दर्शपूर्ण-मास आदि याग करके उसके अनन्तर ही सोम से यजन करे, यह दूसरा पक्ष है। इसमें सोमरस हवनीय द्रव्य है। सोम एक प्रकार की लता है। उसे किसी मनुष्य से खरीद कर उससे रस निकाल कर उससे हवन किया जाता है। इसीलिए यह 'सोमयाग' कहलाता है। यह लता इस समय भारतवर्ष में उपलब्ध नहीं होती, पहले भी यह सर्वत्र उपलब्ध नहीं होती थी, किन्तु किन्हीं पवित्र स्थानों में ही मिलती थी। वे स्थान पूर्वाचार्यों ने गिनाये हैं।

सम्प्रति उसकी उपलब्धि न होने से उसके बदले 'पूतीक' नाम की दूसरी लता लेकर उसी में सोम में किये जानेवाले सब संस्कार कर उसके रस से याग किया जाता है। यद्यपि यह याग एक दिन में ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूर्ण हो जाता है, तथापि अपने अङ्गों के साथ पाँच दिनों में अनुष्ठित होता है। इसमें सोलह ऋत्विक् होते हैं, जो चार गणों में विभक्त रहते हैं। वे हैं—अध्वर्युगण, ब्रह्मगण, होतृगण और उद्गातृगण। प्रत्येक गण में चार-चार ऋत्विक् होते हैं, सब मिलाकर सोलह ऋत्विक् होते हैं। वे यों हैं—

अध्वर्युगण	ब्रह्मगण	होतृगण	उद्गातृगण
(१) अध्वर्यु	(१) ब्रह्मा	(१) होता	(१) उद्गाता
(२) प्रतिप्रस्थाता	(२) ब्राह्मणाच्छंसी	(२) मैत्रावरुण	(२) प्रस्तोता
(३) नेष्टा	(३) आग्नीध्र	(३) अच्छावाक	(३) प्रतिहर्ता
(४) उन्नेता	(४) पोता	(४) ग्रावस्तुत्	(४) सुब्रह्मण्य

लिखने के क्रम के अनुसार ही संख्या भी होती है—पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा। उदाहरणार्थ—अध्वर्युगण में अध्वर्यु पहला है, प्रतिप्रस्थाता दूसरा है, नेष्टा तीसरा है, उन्नेता चौथा है इत्यादि। उसी के अनुसार दक्षिणा में भी क्रम है। जितनी गउएँ दक्षिणा में देने को कही गयी हैं, उन्हें बराबर-बराबर चार भागों में विभक्त कर एक-एक गण के लिए एक-एक भाग दे। एक-एक भाग के लिए दी जानेवाली दक्षिणा भी समविभाग न कर विषम विभाग करके ही देनी चाहिये।

जैसे—अध्वर्यु जितनी गउएँ पाये उससे आधी प्रतिप्रस्थाता, अध्वर्यु के भाग का तृतीय भाग नेष्टा और उसका चतुर्थ भाग उन्नेता पाये। अतएव इनके अर्धी (आधा पानेवाले), तृतीयी (तृतीयांश पानेवाले) और पादी (चतुर्थांश पानेवाले) नाम भी है। इसी प्रकार दूसरे गणों में भी समझना चाहिये।

'यज्ञं व्याख्यास्यामः', 'स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते' (देखिये आप० श्रौ० २४।१।१-२)—अर्थात् हम यज्ञ का व्याख्यान करेंगे, वह तीन वेदों से किया जाता है इस प्रकार आचार्य ने जो तीन वेदों से साध्य कहा है, वह इसी सोमयाग के लिए कहा है। इससे पहले किये जानेवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्निहोत्र, पशुयाग, दर्शपूर्णमास आदि तीन वेदों से साध्य नहीं हैं। अग्निहोत्र केवल यजुर्वेद से साध्य है। दर्शपूर्णमास आदि इष्टियों को कोई ऋग्वेद और यजुर्वेद से करते हैं, कोई यजुर्वेद से ही करते हैं। पशुयाग का अनुष्ठान सभी लोग ऋग्वेद और यजुर्वेद से करते हैं। सोमयाग से ही तीन वेदों का सम्बन्ध होता है। इसीलिए सोमयाग में तीनों वेदों के ऋत्विजों का अलग-अलग वेदों के कर्म करने के लिए वरण किया जाता है। उनमें अध्वर्युगण यजुर्वेदी होता है, होतृगण का ऋग्वेदीय कर्म का अनुष्ठान करने के लिए और उद्गातृगण का सामवेदीय कर्म करने के लिए वरण होता है। इन तीनों गणों द्वारा किये जा रहे कर्मों का अवेक्षण करने के लिए ब्रह्मगण का वरण किया जाता है। इस प्रकार चारों गणों का उपयोग होता है। विशेष कात्यायनश्रौतसूत्रादि में निरूपित है। यह सोमयाग अग्निष्टोमसंस्थाक होनेसे 'अग्निष्टोम' कहलाता है। 'अग्निष्टोम' यह साम का नाम है। सामवेद में 'यज्ञायज्ञा वो अग्नये' इस ऋचा में गान के रूप से विहित साम अग्निष्टोम कहलाता है। संस्था शब्द समाप्ति का वाचक है। इस क्रतु (याग) में यही अन्तिम साम है; उसके बाद फिर कोई दूसरा साम नहीं है। इसलिए इसी साम से समाप्त होने के कारण यही अग्निष्टोमसंस्थाक क्रतु अग्निष्टोम कहा जाता है। सोमयाग की जिस साम से समाप्ति होती है उस नाम से उसका व्यवहार श्रुति में जगह-जगह पर देखा जाता है। उदाहरणार्थ—उक्थ्य, षोडशी इत्यादि। इसलिए यतः अग्निष्टोम साम से इसकी समाप्ति होती है, अतः इसकी 'अग्निष्टोम' यह संज्ञा उचित है। यह ज्योतिष्टोम की पहली संस्था है।

ज्योतिष्टोम की चार संस्थाएँ हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र। अग्निष्टोम साम से समाप्त किया जानेवाला याग 'अग्निष्टोम' शब्द से व्यवहृत होता है, यह पहले कहा जा चुका है[1]। अग्निष्टोम

(१) यज्ञायज्ञीय नाम के अग्निष्टोम साम से जहाँ पर यज्ञ की समाप्ति होती है, वह यज्ञ अग्निष्टोम है। उसी अग्निष्टोम में "राजन्यस्य षोडशिनं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साम के बाद जहां उक्थ्य साम से स्तुति की जाती है उसके बाद फिर कोई साम नहीं पढ़ा जाता, वह उक्थ्यसंस्थावाला ज्योतिष्टोम[1] है। उक्थ्य स्तोत्र के अनन्तर जहाँ पर षोडशी नामक स्तोत्र किया जाता है वह षोडशीसंस्थावाला ज्योतिष्टोम है[2]। षोडशी स्तोत्र के अनन्तर जहाँ अतिरात्र नाम के साम गाए जाते हैं, वह अतिरात्र संस्थावाला ज्योतिष्टोम है। इस तरह चार संस्थाओं से युक्त क्रतु का नाम ज्योतिष्टोम है।

गृह्णीयात्" अग्नि और मारुत् के बाद षोडशिग्रह के जब स्तोत्र और शस्त्र होते हैं तब वह 'अत्यग्निष्टोम' कहलाता है।

१—जिससे सोम का उत्थापन किया जाता है वह उक्थ्य है। अग्निष्टोम के बारह स्तोत्रों के ऊपर के उक्थ्य नाम के तीन स्तोत्र जिस क्रतु (याग) में हों, वह उक्थ्य क्रतु है। इससे उक्थ्य में पन्द्रह स्तोत्र और उतने ही शस्त्र होते हैं।

२—जिस क्रतु में सोलह शस्त्र होते हैं वह क्रतु षोडशी है। यह स्वतन्त्र क्रतु नहीं है, इसलिए अग्निष्टोम आदि के तुल्य यह पृथक् अनुष्ठान के योग्य नहीं है। किन्तु 'पृष्ठ्य नामक षडहयाग' के चतुर्थ दिन में इसका प्रयोग होता है। "न वै षोडशी नाम यज्ञोऽस्ति यद्वाव षोडशं शस्त्रं षोडशं स्तोत्रं तेन षोडशी" (तै० सं० ६।६।११।१)। अग्निष्टोमसंस्थावाला ज्योतिष्टोम बारह शस्त्रों से युक्त है। "द्वादशाग्निष्टोमस्य शस्त्राणि" (ता० ब्रा० ६।३।३) अर्थात् ज्योतिष्टोम के बारह शस्त्र हैं। अग्निष्टोम संस्थावाला जिसके गर्भ में है, ऐसा उक्थ्यसंस्थावान् ज्योतिष्टोम तीन स्तोत्रों से अधिक है। इस कारण उक्थ्य में पन्द्रह स्तोत्र होते हैं। उक्थ्यसंस्थावाला जिसके गर्भ में है, ऐसे षोडशि-संस्थावाले ज्योतिष्टोम में एक स्तोत्र अधिक है। तदनन्तर स्तोत्रों में यह स्तोत्रप्रयोग षोडशसंस्था की पूर्ति करनेवाला होता है। इस प्रकार षोडशी ग्रह और षोडशी शस्त्र है। "एतत्त्रयं सह क्रियते ग्रहः स्तोत्रं शस्त्रम्" (शत० ब्रा० ८।१।३४) अर्थात् ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र ये तीनों इकट्ठे किये जाते हैं। 'षोडशिशस्त्रम्' (ऋ० २।८४।१-२०) इत्यादि, 'असावि सोम इन्द्र ते' (आश्व० श्रौ० ६।२।१२)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्रिवृत, पञ्चदश, सप्तदश और एकविंश ये चार स्तोम[1] 'ज्योतिः' कहलाते हैं। ज्योति जिसके स्तोम हों वह ज्योतिष्टोम है (ज्योतींषि स्तोमा यस्य सः) इस पद का निर्वचन करनेवाले ब्राह्मण में ऐसा ही

१--तिस्रः वृतः यस्य स्तोमस्य स त्रिवृत्स्तोमः। (ता० ब्रा० १।५।१०, य० सं० १०।१०) अर्थात् जिस स्तोम के तीन अवयव हों वह स्तोम त्रिवृत् कहलाता है। वे स्तोम हैं "उपास्मै गायता, दविद्युतत्या रुचा, पवमानस्य ते कवे" (साम० सं० उ० आ० १।१।१-३) इन तीन ऋचावाले तीन सूक्तों में विद्यमान नौ ऋचाओं का तीन आवृत्तियों से गान करना चाहिये। उनमें से पहली आवृत्ति में तीन सूक्तों में पहली तीन ऋचाएँ गानी चाहिये। दूसरी आवृत्ति में बीच की तीन ऋचाएँ और तीसरी आवृत्ति में अन्त की तीन ऋचाएँ गानी चाहिये। इस गान का नाम त्रिवृत्स्तोम- स्तोत्र है। एक तीन ऋचावाले सूक्त में विद्यमान तीन ऋचाएँ ब्राह्मण में कही गयी एक विशेष प्रकार की आवृत्ति से जिस स्तोम में पञ्चदश (पन्द्रह) संख्यावाली बनायी जाती हैं वह पञ्चदश स्तोम है। इसमें तीन ऋचावाले एक सूक्त की तीन बार आवृत्तियाँ करनी चाहिये। उनमें पहली आवृत्ति में पहली ऋचा को तीन बार पढ़े, शेष दो को एक-एक बार। दूसरी आवृत्ति में बीच की ऋचा को तीन बार पढ़े, शेष पहली और तीसरी को एक एक बार। तीसरी आवृत्ति में अन्तिम ऋचा को तीन बार, पहली और दूसरी को एक-एक बार (देखिये ता० ब्रा० २।४।१)। एक तृच में (तीन ऋचावाले सूक्त में) विद्यमान तीन ऋचाएँ ब्राह्मण में उक्त विशेष आवृत्ति से जिस स्तोम में इक्कीस होती हैं वह एकविंश स्तोम है। तीन ऋचावाले एक सूक्त की तीन बार आवृत्ति करनी चाहिये। उनमें पहली आवृत्ति में तृच की अन्तिम ऋचा की एक बार आवृत्ति और अन्यों की तीन तीन बार, दूसरी आवृत्ति में पहली ऋचा की एक बार आवृत्ति और शेषों की तीन तीन बार तथा तीसरी आवृत्ति में बीच की ऋचा की एक बार आवृत्ति और अन्यों की तीन तीन बार आवृत्ति होती है यह एकविंश स्तोम है (देखिये तां० ब्रा० २।१४।१)। स्तोत्र-विशेष स्तोम है। साम से होनेवाली स्तुति स्तोम है। त्रिवृत्, पञ्चदश, (१५) सप्तदश, (१७)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निर्वचन किया है—"त्रिवृत्, पञ्चदशः, अष्टादशः, एकविंश एतानि वाव तानि ज्योतींषि य एतस्य स्तोमाः।" (तै* ब्रा० १।५।११)। इन्हीं चार संस्थाओं के कहीं आवाप, उद्वाप आदि से अन्य तीन संस्थाओं का सम्पादन होता है। वे हैं—अत्यग्निष्टोम, वाजपेय और अप्तोर्याम। अग्निष्टोम स्तोत्र के अनन्तर उक्थ्य का अनुष्ठान न कर जहाँ पर षोडशी की जाती है वह अत्यग्निष्टोम नाम का क्रतु है।

इन्हीं सात संस्थाओं का स्मृति में नित्यरूप से विधान किया गया है। उनमें अग्निष्टोमसंस्था वाले ज्योतिष्टोम में बारह स्तोत्र और बारह शस्त्र होते हैं। एक बहिष्पवमान[1] स्तोत्र, चार आज्य[2] नाम के स्तोत्र,

---

एकविंश (२१), त्रिनव (२७), त्रयस्त्रिंश (३३), चतुश्चत्वारिंश (४४), अष्टचत्वारिंश (४८) शब्दों से साम की विभिन्न आवृत्तियों के भेद से निष्पन्न स्तोम कहे जाते हैं। त्रिवृत् स्तोम में साम की आवृत्ति न होने पर भी नौ ऋचाएँ होने से संख्या की समानता है (देखिये साय० भा० तै० सं० १।३।१)।

(१) सामवेदियों के उत्तरार्चिक में तीन ऋचावाले सूक्त कहे गये हैं (सा० उ० आ० १।१।१-९)। वहां 'उपास्मै' पहला सूक्त है, 'दविद्युतत्या' दूसरा सूक्त है तथा 'पवमानस्य ते' तीसरा सूक्त है। ज्योतिष्टोम के प्रातःसवनानुष्ठान में उक्त तीन सूक्तों में गायत्र साम गाना चाहिये। यह तीन सूक्तों के गान से होनेवाला स्तोत्र बहिष्पवमान कहलाता है, क्योंकि उसमें विद्यमान ऋचाएँ पवमानार्थक हैं और 'बहिः' शब्द से सम्बद्ध हैं।

(२) जिनसे चारों ओर विजय प्राप्त करते हैं, वे आज्य कहलाते हैं (देखिये ऐ० ब्रा० २।५।४, तां० ७।२)। सामवेद उत्तरार्चिक में तीन बहिष्पवमान सूक्तों के बाद जो चार सूक्त कहे गये हैं, प्रातःसवन में गायत्र साम से गाये जाते हुए वे ही चार आज्यस्तोत्र कहे जाते हैं (देखिये तां० ब्रा० २।४।६)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चार पृष्ठ्य[1] नामक स्तोत्र, एक माध्यन्दिनपवमान[2] नाम का स्तोत्र, एक आर्भवपवमान स्तोत्र[3] और एक अग्निष्टोम[4] स्तोत्र होता है। अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम—इन सभी सोमयागों में जितने स्तोत्र होते हैं उतने ही शस्त्र होते हैं। स्तोत्र और शस्त्रों का स्वरूप (लक्षण) पहले बतलाया जा चुका है। सभी जगह "ग्रहं वा गृहीत्वा चमसं वोन्नीय स्तोत्रमुपाकरोति" (तै० सं० ३।१।२) इस शास्त्र से जिस देवता के लिए ग्रह या चमस का ग्रहण किया जाता है, उस देवतावाला स्तोत्र उस देवता के ग्रह और चमस के ग्रहण के अनन्तर ही उद्गाता आदि तीन ऋत्विजों के द्वारा आरंभ

---

(१) बृहद्, रथन्तर, वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत ये छः साम पृष्ठ्य कहे जाते हैं (देखिये ता० ब्रा० ७।६।७ तथा तै० ब्रा० १।२।२।३)। पृष्ठों का समूह पृष्ठ्य है (पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यः पा० व्या० वा० ४।२।४२)। स्पृशति प्राप्नोति स्वर्गं लोकमनेन सामषट्केन इति पृष्ठ्यः 'स्वर्गं लोकमस्पृशंस्तस्मात् पृष्ठ्यः' (देखिये शत० ब्रा० १२।२।२।११)। रथन्तर आदि छः स्तोत्र पृष्ठ्य स्तोत्र कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त सातवाँ पृष्ठ्यस्तोत्र कोई भी नहीं है। (देखिये, तै० संहिता का सायणभाष्य १।१५)।

(२) उत्तरार्चिक में आज्यस्तोत्रों के बाद जो तीन सूक्त हैं, वे ही माध्यन्दिन सवन में गायत्र, आमहीयव, रौरव, यौधाजय, औशनस सामों से गाये जानेवाले पांच माध्यन्दिनसवन स्तोत्र हैं। तदनन्तर कहे गये चार सूक्तों में रथन्तर, वामदेव्य, नौधस, कालेय सामों से सम्पाद्यमान चार पृष्ठ स्तोत्र माध्यन्दिन सवनीय ही हैं (देखिये ता० ब्रा० ७।३।५)।

(३) तीसरे सवन में गाने योग्य गायत्र, संहित, शफ, पौष्कल, श्यावाश्व, गन्धीगव सामों से निष्पादन किये जानेवाले ऋभु नाम के देवताओं से दृष्ट छः आर्भवपवमान स्तोत्र हैं (देखिए ता० ब्राह्मण ८।४।५)।

(४) जिस साम से अग्निष्टोम संस्था की समाप्ति की जाती है वह अग्निष्टोम (साम) स्तोत्र है।

 CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया जाता है। उसका प्रकार इस तरह है—सामवेद में एक ऋचा में एक-एक साम उत्पन्न होता है। यज्ञ के समय उस साम को तीन ऋचाओं में गाने का विधान है। एक साम जिस तृच में किया जाता है वह 'स्तोत्रीय' कहलाता है। उसमें प्रथमा ऋक् 'योनि' कहलाती है। ऊपर की दो ऋचाएँ 'उत्तरा' कही जाती हैं। जो साम योनि में गाया जाता है वही उत्तराओं में भी गाया जाता है। उसी गान में त्रिवृत्, पञ्चदशादि स्तोमों का भी विधान किया गया है और उन स्तोमों का तीन ऋचाओं में सम्पादन होता है। इसलिए जहां पर पञ्चदशस्तोमता का विधान है वहां प्रथम ऋचा में उस साम का तीन बार पाठ कर दूसरी और तीसरी में एक-एक बार पाठ करे यह पहला पर्याय है। इस पर्याय में मिलकर पञ्चत्वसंख्या सम्पन्न हुई। दूसरे पर्याय में पहली ऋचा को एक बार और दूसरी को तीन बार पढ़कर तीसरी को एकबार पढ़े। यहां भी पञ्चत्वसंख्या सम्पन्न हुई। तीसरे पर्याय में पहली और दूसरी को एक-एक बार पढ़कर तीसरी को तीन बार पढ़े। इसमें भी पञ्चत्वसंख्या सम्पन्न हुई। सब मिलकर पञ्चदश (पन्द्रह) हुए। यही पञ्चदशस्तोम है। इसी तरह सप्तदश आदि में समझना चाहिये। वहां पर भी एक-एक साम का पांच प्रकारों में विभाग किया जाता है—प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। वहाँ सभी साम के गायक तीन ऋत्विक् होते हैं—प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता। वहां पर प्रस्ताव नाम का प्रथम भाग प्रस्तोता द्वारा प्रस्तुत होता है। दूसरा भाग, जिसका नाम उद्गीथ है, उद्गाता द्वारा गाया जाता है। तीसरा प्रतिहार नाम का भाग प्रतिहर्ता द्वारा गाया जाता है। चौथे और पांचवें भाग का सब गान करते हैं। इसी तरह सर्वत्र स्तोत्रकरण होता है। इस प्रकार स्तोत्र को समाप्त करने पर जिस देवता का स्तोत्र हो उस देवता का शस्त्र होता पढ़ता है, क्योंकि 'स्तुतमनु शंसति' (ता० ब्रा० ६।८।१०), 'स्तोत्रमनु शस्त्रात्' (आश्व० श्रौ० ६।५०), 'स्तुवतेऽथ शंसति' (श० ब्रा० ८।१।३।३

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ये वचन हैं। कहीं कहीं मैत्रावरुण और अच्छावाक के भी शस्त्रों का विधान है।

इसलिए जितने ग्रह हैं उतने ही स्तोत्र हैं यह सिद्ध हुआ। उनमें प्रातःसवन में एक वहिष्पवमान और चार आज्य—ये पांच स्तोत्र होते हैं। माध्यन्दिनसवन में चार पृष्ठ और एक माध्यन्दिनपवमान यों पाँच होते हैं। तृतीयसवन में आर्भवपवमान और अग्निष्टोम ये दो होते हैं। अग्निष्टोमसंस्था ही अन्य छः संस्थाओं, एकाहों तथा द्वादशाहकी प्रकृति है। सोमयागों का एकाह से लेकर हजार वर्षपर्यन्त विधान है। एक दिन में पूर्ण होनेवाले याग एकाह[1] कहे जाते हैं। दो दिनों में निष्पन्न होनेवाला सुत्यात्मक याग 'द्विरात्र' कहलाता है।

---

(१) एकाह बाईसवें अध्याय में सूत्रकार ने बतलाये हैं। वे हैं—ज्योति[1], गौ[2], आयु[3], अभिजित्[4], विश्वजित्[5], सर्वजित्[6], ज्योतिसाहस्र[7], विश्वज्योतिसाहस्र[8], सर्वज्योतिसाहस्र[9], त्रिरात्रसम्मित[10], साहस्र[11], साद्यस्क्र नाम के छः एकाह[16] (अनुक्री, विश्वजिच्छिल्पः, श्येन—यह तीनों की संज्ञा है अन्य तीनों की साद्यस्क्र यही संज्ञा है।) चार व्रात्यस्तोम १७–२० अग्निष्टुत्[21] (इन्द्रस्तुत् सूर्यस्तुत्), त्रिवृत् नाम के चार एकाह हैं, वे हैं ईप्सुयज्ञ[22], बृहस्पतिसव[23], इषु[24], और सर्वस्वार[25]। ऋत्विगपोहनीय नाम के तीन एकाह हैं २६-२८ उनमें एक सर्वस्तोम है। चार वाचस्तोम २९-३२ हैं। चार चातुर्मास्य सौमिक ३३-३६ हैं। अग्न्याधेय, पुनराधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, दाक्षायण, आग्रयण पशुबन्ध ये छः सौमिक ३७–४२ हैं। सप्तदश नाम के पाँच ४३-४८ एकाह हैं। उनमें पहले का नाम उपहव्य, दूसरे का नाम ऋतपेय, तीसरे का दूणास, चौथे का वैश्यस्तोम और पाँचवें का तीव्रसुत् है। तदनन्तर द्वन्द्वयज्ञ होते हैं। इनमें एक का अनुष्ठान कर उसके अनन्तर दूसरे का अवश्य ही अनुष्ठान करना चाहिये। उनमें राट् विराट् यह एक द्वन्द्व है[49]। औपसद पुनस्तोम यह दूसरा द्वन्द्व[50] है। दो चतुष्टोम यह तीसरा द्वन्द्व[51] है। उद्भित् बलभित् यह चौथा द्वन्द्व[52] है। दो अपचितियां[53], दो अग्नि के स्तोम[54], ऋषभ मरुत्स्तोम[55] यह छठा द्वन्द्व है। ऐन्द्रकुलाय द्वियज्ञ यह सातवाँ द्वन्द्व [56]। इन्द्रस्तोम ऐन्द्राग्न्यस्तोम[57] यह आठवां

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस प्रकार पहले दिन अभिषव से लेकर होमपर्यन्त जो याग किये गये उन्हीं का दूसरे दिन भी जहाँ विशेष विधि के साथ अनुष्ठान होता है वह 'द्विरात्र' कहलाता है। यह केवल प्रधान में ही होता है। पर उपसद्-दीक्षादि अङ्गों का अनुष्ठान वहाँ वहाँ पर विधि के अनुसार दो, तीन, चार, पांच आदि दिनों में होता है। यही बात त्रिरात्र आदि क्रतुओं में जाननी चाहिए। इस प्रकार द्विरात्र से लेकर एकादशरात्र तक के क्रतुओं की संज्ञा 'अहीन' है। त्रयोदश रात्र से लेकर हजार वर्ष तक के क्रतु 'सत्र' कहे जाते हैं। उनमें भी त्रयोदशरात्र से लेकर शतरात्र तक के रात्रिसत्र हैं। तदनन्तर केवल सत्र[1] हैं। द्वादशाह अहीन भी है और सत्र भी,

---

द्वन्द्व है। घंन विघन[५८] यह नवाँ द्वन्द्व है। संदंश वज्र[५९] यह दशवां द्वन्द्व है। आश्वलायनश्रौतसूत्र में इनके अतिरिक्त भी एकाह कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

१ विष्णुवस्तोम, २ धृति, ३ उशनसस्तोम (पुनःस्तोम), ४ भूमिस्तोम, ५ वनस्पतिस्तोम, ६ भूस्तोम, ७ सद्यस्क्रिया, ८ अनुक्रिया, ९ परिक्रिया, १० एकत्रिक, ११ त्र्येक, १२ गोतमस्तोम, १३ अजिर, १४ इन्द्रस्तुत्, १४ तीव्रस्तोम, १६ क्रान्ति, १७ अतिमूर्ति (बहुसुवर्ण), १८ सूर्यस्तुत्, १९ विश्वदेवस्तुत्, २० पञ्चशारदीय, २१ विवध, २२ गोसव, २३ शंद, २४ उपसद, २४ वाजपेय एकाह (अथवा सप्तदशापवर्ग)। आपस्तम्बश्रौतसूत्र में और भी एकाह कहे गये हैं, उन्हें वहीं से जान लेना चाहिये।

(१) उनमें १ आङ्गिरस, २ चैत्ररथ, ३ कापिवन ये तीन द्विरात्र हैं। इन्हें ब्यह भी कहते हैं। १ गर्ग, २ वैद, ३ छन्दोम, ४ अन्तर्वसु, ५ पराक ये पांच त्रिरात्र त्र्यह हैं। १ अत्रिचतुर्वीर, २ जामदग्न्य, ३ वसिष्ठसंसर्प, ४ विश्वामित्र ये चार चतुरात्र हैं। इस जामदग्न्य में उपसद पुरोडाश की होती है, यह विशेष है। १ देवपञ्चाह, २ पञ्चशारदीय, ३ व्रतवान् ये तीन पञ्चरात्र हैं। १ ऋतुषडह,[२] पृष्ठ्यावलम्ब, ३ त्रिकद्रुक ये तीन षड्रात्र हैं। जनकसप्तरात्र एक सप्ताह है। केवल एक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसीलिए वह उभयात्मक कहा जाता है। यह सत्र और अहीनों का प्रकृतिभूत है। सत्ररूप द्वादशाह सत्रों की और अहीनात्मक अहीनों की प्रकृति है, ऐसा निर्णय किया गया है।

यह सोमयाग सब सोमयागों का प्रकृति है, यह कहा जा चुका है। अतएव इस सोमयाग के सर्वतोभावेन ज्ञात होने पर ये सब ऊपर कहे गये क्रतु प्रायः ज्ञात हो जाते हैं। अतः जिन्हें ऊपर कहे गये क्रतुओं को जानने की इच्छा हो और जो सोमयाग का स्वरूप जानना चाहते हों, उनके लिए इसका परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए यद्यपि इसके स्वरूप का सर्वांश से निरूपण करने की अपेक्षा और आवश्यकता है, तथापि विस्तार के भय से उसके सब पदार्थों का यहाँ पर निरूपण नहीं किया जाता। उन्हें विभिन्न प्रकरणों के के सूत्रों के अवलोकन द्वारा बुद्धिमान् पुरुष ठीक तरह जान सकते हैं। यहाँ पर मुख्य-मुख्य कतिपय पदार्थों का सुखपूर्वक ज्ञान के लिए संग्रह किया जाता है। वे इस प्रकार हैं—पहले वसन्त ऋतु में किसी शुभ दिन में आभ्युदयिक श्राद्ध करके इसका प्रारम्भ करना चाहिये। सोमयाग को प्रायः शुक्लपक्ष की एकादशी को आरम्भ कर पूर्णिमा को समाप्त करने की परम्परा है। आभ्युदायिक करने के बाद ऋत्विजों का वरण किया

अष्टरात्र अष्टाह है। नवरात्र यह एक नवाह है। १ त्रिककुप्, २ कौसुरुविन्द, ३ पूष्टोम, ४ छन्दोमदशाह ये चार दशरात्र है। पौण्डरीक एक एकदशरात्र है। द्वादशरात्र केवल १ द्वादशाह है। तदनन्तर त्रयोदशरात्र संज्ञावाले दो सत्र हैं। चतुर्दशरात्र तीन सत्र हैं। पञ्चदशरात्रवाले चार हैं। षोडशरात्र, सप्तदशरात्र अष्टादशरात्र, एकोनविंशरात्र और विंशतिरात्र ये प्रत्येक एक एक हैं। एकविंशतिरात्र के दो भेद हैं। द्वांविंशतिरात्र, त्रयोविंशतिरात्र केवल एक एक है। चतुर्विंशतिरात्र के दो भेद हैं। पञ्चविंशतिरात्र, षड्विंशतिरात्र, सप्तविंशतिरात्र, अष्टाविंशतिरात्र, एकोनत्रिंशद्रात्र, त्रिंशद्रात्र, एकत्रिंशद्रात्र, द्वात्रिंशद्रात्र एक एक हैं। त्रयस्त्रिंशद्रात्र तीन हैं। चतुस्त्रिंशद्रात्र, पञ्चत्रिंशद्रात्र एक एक है और षड्त्रिंशद्रात्र दो हैं इत्यादि।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाता है। उनमें सोमप्रवाक नाम के ऋत्विक् का पहले वरण करना चाहिये। वृत सोमप्रवाक अध्वर्यु आदि के घर जाकर उनसे कहे—'अमुक शर्मा का यज्ञ होनेवाला है। उसमें आप ऋत्विक् बनने की कृपा करें।' उन अध्वर्यु आदि के यह पूछने पर कि 'आधान आदि में कौन ऋत्विक् हुए? वे कहाँ गये? इस समय हमें क्यों खोज रहे हो? क्या यजमान अच्छी दक्षिणा देता है?' उनका समुचित उत्तर देकर उन्हें साथ लेकर यजमान के घर आये। उनके घर आने पर यजमान उनका वरण करता है। अन्य शाखाओं में सदस्यों का भी वरण कहा गया है। (देखिये आप० श्रौत सू० १०।१।६-१०), परन्तु माध्यन्दिन श्रुति में उसका निषेध किया है (देखिये श० ब्रा० १०।४।१।१६)। वरण किये हुए ऋत्विजों के लिए मधुपर्क दिया जाता है। इतना कार्य घर में करके अरणि में अग्नियों का समारोप करके जहाँ यज्ञ किया जानेवाला हो, उस जगह जाय। वहाँ जाकर शाला या विमित का निर्माण कर वहाँ मण्डप बनाकर दो अरणियों का मन्थन कर उससे निकली हुई अग्नियों की विभिन्न कुंडों में स्थापना करे। अपराह्ण में दम्पति का अभीष्ट अथवा नियत ही भोजन होता है। उसी दिन दम्पति का भोजन होता है। तदनन्तर चारों दिन उपवास ही रहता है। अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) के अनन्तर पुनः इनका अभीष्ट भोजन होता है। बीच में जितना कहा गया हैं, केवल उतना व्रत (दुग्ध, यवागू, आमीक्षा) का प्राशन ही होता है। तदनन्तर यजमान का क्षौर होता है। फिर स्नान और तब दीक्षणीयेष्टि होती है—उसमें अग्नि-विष्णुदेवताक एकादशकपाल पुरोडाश हवनीय द्रव्य है और अग्नि-विष्णु देवता। इष्टि के अन्त में नवनीत से दम्पति का सिर से लेकर पैर तक अभ्यङ्ग होता है। तदुपरान्त उनकी मुट्ठी बँधती है। मुष्टिबन्धन के समय दोनों हाथों की सब अंगुलियों को बाँधकर फिर अँगूठे और तर्जनी को खोल दें। अन्य बँधी ही रहें। माध्यन्दिनसवन तक उन्हें न खोलें। दम्पति को मुट्ठी बाँधकर ही सब काम करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चाहिए। तदनन्तर औद्ग्रभणहोम होते हैं। उसके बाद कृष्णाजिनादि दीक्षा होती है। उसमें कृष्णाजिन पर बैठ कर मेखला बाँधकर पगड़ी से सिर को ढकना चाहिये। पत्नी का कृष्णाजिनारोहण नहीं होता। मेखला और जोत में से किसी एक का बंधन होता है। पत्नी के सिर में जाल या पगड़ी का बन्धन होता है। खुजलाने के लिए कृष्ण मृग का सींग पहनने के वस्त्रों के छोर में बाँध कर रखना चाहिये। खुजलाहट होने पर उसी से खुजलायें। फिर यजमान दण्ड ग्रहण करे। उसके बाद शाम को 'यह ब्राह्मण दीक्षित है' ऐसा प्रतिप्रस्थाता कहे। क्षत्रिय और वैश्य यजमानों का भी 'ब्राह्मण' शब्द से ही आवेदन करना चाहिये। तब से लेकर अवभृथ स्नान होने तक दाँतौन करना, स्नान, अग्निहोत्र होम, दर्शपूर्णमास आदि तथा वैश्वदेव के लिए पाक, स्मार्तोपासनानुष्ठान, दान, शूद्र से बोलना, प्रत्युत्थान, अभिवादन और जल में अवगाहन नहीं करना चाहिये।

तदनन्तर प्रवर्ग्य के लिए महावीर संभरण[1] होता है। आगे प्रवर्ग्य नाम का एक होम कहा जायगा। उसके लिए जो पात्र है वह महावीर कहलाता है। इस समय उसका निर्माण करना चाहिए। यह पात्र ऊखल के आकार का, बित्ताभर ऊँचा, नौ अंगुल ऊँचाई पर मेखला से युक्त, बीच में संकुचित (गड्ढावाला) तथा दही आदि छोड़ने के योग्य होना चाहिये। केवल मिट्टी, बांबी से निकाली हुई मिट्टी, सूअर से खोदी गयी मिट्टी, पूतिका, बकरी के दूध और गवेधुका के संमिश्रण से यह महावीर बनाया जाता है। तदुपरान्त यूप काटने के लिए वन में जाना और यूप का निर्माण आदि होता है[1]। फिर सूर्यास्त होने पर

१—खौलाये हुए घी में दूध डालकर बनाया जानेवाला एक प्रकार का खाद्य 'घर्म' है। वही प्रक्षेप, प्रवृञ्जन कहा जाता है। उस प्रवृञ्जन के कारण ही इस कर्म का नाम प्रवर्ग्य है। उसमें 'घर्म' के पाक के लिए मिट्टी का बना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्रत-भोजन होता है। यहाँ पर व्रत शब्द से दूध आदि कहे जाते हैं। उनमें ब्राह्मण का पयःपान, क्षत्रिय का लपसीभक्षण और वैश्य के लिए आमिक्षा है। उसके निर्माण की रीति इस प्रकार है—पहले दिन व्रत (दूध) दुहने के लिए एक गऊ को यज्ञशाला के निकट लाकर उसके एक ही स्तन को दुहे। उससे जितना दूध मिले उसके दो भाग कर गार्हपत्य अग्नि में यजमान के लिए और दक्षिणाग्नि में पत्नी के लिए उबालकर दे। यजमान और पत्नी उसे पीयें। दूसरे और तीसरे दिन मध्याह्न में और रात्रि में दो बार व्रत (दुग्ध) प्राशन करना चाहिए। दूसरे दिन दो स्तनों का दूध पयोव्रत होता है, तीसरे दिन तीन स्तनों का दूध, किन्तु चौथे और पांचवे दिन केवल हविश्शेष का ही भक्षण होता है (देखिये का० श्रौ० ८।७।२२), पय आदि व्रत का भक्षण नहीं होता। तदनन्तर भूमि में अग्नि की ओर मुख करके सोये। यहाँ तक पहले दिन का कृत्य है।

दूसरे दिन का कृत्य

तदनन्तर दूसरे दिन प्रायणीयेष्टि[1] होती है। उसमें पांच देवता हैं—अदिति, पथ्या स्वस्ति, अग्नि, सोम और सविता। अदिति के लिए चरु तथा औरों के लिए आज्य हवनीय

हुआ ऊखल की आकृति का एक प्रकार का पात्र महावीर है। लक्षणा-वृत्ति से धर्म, प्रवर्ग्य, महावीर ये तीनों पद समानार्थक हैं। (देखिये तै० सं० सायण भाष्य ५।११।१, श० ब्रा० १४।१।१०-११)।

१ 'प्रयन्ति स्वर्गमनया सा प्रायणीया' जिससे लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है उस इष्टि का नाम प्रायणीयेष्टि है। इस इष्टि से सोमयाग का आरंभ होता है (देखिये का० श्रौ० ७।५।१३, आ० श्रौ० ४।२।१८, ४।३।१)। जिस दिन सोम खरीदा जाता है उस दिन प्रापणीया नाम की इष्टि करनी चाहिये। (देखिये तै० सं० ६।१।५।१, श० ब्रा० ३।२।३।२, निरु० १३।१।७)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्रव्य है। इष्टि के अन्त में जिसमें कुछ चरु बचा हो (पोछपाछ कर साफ न की हुई) चरुस्थाली और मेक्षण[1] को उदनीयेष्टि के लिए रख दे। तदनन्तर सोम की खरीद होती है। किसी कौत्सगोत्रीय ब्राह्मण द्वारा अथवा शूद्र द्वारा सोम मँगाकर फिर उसे खरीदे। सोम सुवर्ण, वस्त्र, बकरी, सवत्सा गऊ, तीन गउएँ आदि बहुत-सी वस्तुओं से खरीदा जाता है (देखिये का० श्रौ० ७।०।१४,१५)।

खरीदे हुए सोम को अध्वर्यु गाड़ी पर लाद कर बैलों से खींची जा रही गाड़ी को यज्ञशाला में मंगा कर उस सोम को उदुम्बर की आसन्दी (मूंज की रस्सी से बुनी हुई एक छोटी मञ्चिका) पर रखकर यज्ञशाला में स्थापित करे। तदनन्तर आतिथ्येष्टि होती है। उसके विष्णु देवता हैं, नवकपाल (नौ कपालों में संस्कृत) पुरोडाश हवनीय द्रव्य है। यह खण्डेष्टि है। इस समय से यजमान दम्पति को जल के सब काम 'मदन्ती' नाम के गरम जल से करने चाहिये। वे ठण्ढे जल का स्पर्श न करें। तदनन्तर सब ऋत्विक् और यजमान तानूनप्त्र नामक घृत का स्पर्श करते हैं। यह स्पर्श अवभृथ स्नान होने तक परस्पर द्रोह न करने के लिए शपथरूप है[2]। तदनन्तर प्रवर्ग्य का अनुष्ठान होता है। प्रवर्ग्य का अग्निष्टोम के प्रथम प्रयोग में विकल्प है, और प्रयोगों में तो वह नित्य है। प्रवर्ग्य नामक कर्म पत्नी को नहीं देखना चाहिये। गार्हपत्य और आहवनीय अग्नि के उत्तर की

---

१. एक प्रकार का इध्म का भेद। इध्म से आधा प्रमाणवाला यानी बित्ताभर का इध्म। इध्म दो बित्ते का होता है।

२—अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विक् और यजमान का परस्पर द्रोहशून्य होकर ऐकमत्य से यज्ञ कार्य का सम्पादन करने के लिए घृतस्पर्शपूर्वक मन्त्रों से जो शपथ करना है उसीका नाम तानूनप्त्र कर्म है। आपस में ईर्ष्या-द्वेषरहित हो हम लोग विधिपूर्वक यागकार्य का सम्पादन करने के लिए प्रयत्न करेंगे, इत्याकारक स्वीकार।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ओर दो एक हाथ लम्बे-चौड़े और एक अंगुल ऊँचे दो खर (देखिये का० श्रौ० २६।२।३०) तथा दक्षिण की ओर तीसरा खर उतना ही बड़ा बालू से बनाकर आहवनीय के पूर्व में सम्राड् आसन्दी रखकर उसमें दो महावीरों को प्राप्त करे। उसी के मूँज के बनाये हुए इड्वों (बीच में मोड़कर दोहरे किये) को आहवनीय अग्नि से जलाकर उन्हें खर में रखकर वहां पर आज्यपूर्ण महावीर को रख कर होता द्वारा मन्त्र पढ़े जाने पर प्रत्येक प्रणव पर स्रुव के आज्य से उसका सिञ्चन करे। तदनन्तर रौहिण पुरोडाश का अनुष्ठान होता है। उसमें पहले दक्षिण पुरोडाश का हवन कर गऊ को दुह कर परीशास (रस्सी के विशेष प्रकार के पाश) से महावीर को लाकर उस पर बकरी का दूध छोड़कर दूध के शान्त होने पर गऊ का दूध छोड़े, यह 'घर्म' कहा जाता है। उसके पश्चात् रौहिण का हवन करे। इसी प्रकार अपराह्ण में भी प्रवर्ग्य का अनुष्ठान होता है। उसके अनन्तर उपसद् इष्टि होती है। उसमें आज्य हवनीय द्रव्य है। अग्नि, सोम और विष्णु देवता हैं। तदनन्तर स्रुव से प्रातःकालीन उपसद् होम होता है। इसी प्रकार सायंकाल में, यों प्रतिदिन दो उपसद् होम होते हैं। दूसरे, तीसरे और चौथे—इन तीन दिनों में उपसदों का तथा प्रवर्ग्य का अनुष्ठान होता है। सब मिलाकर ज्योतिष्टोम में छः उपसद् होते हैं। यहाँ तक दूसरे दिन का कृत्य है।

तीसरे दिन का कृत्य

तीसरे दिन प्रातःकाल प्रवर्ग्य और उपसद् होम कर सौमिक महावेदी का निर्माण कर अपराह्ण के प्रवर्ग्य और उपसद् का प्रचरण करे, यह तीसरे दिन का कृत्य है।

चौथे दिन का कृत्य

तदनन्तर चौथे दिन अग्नीषोमीय पशु का अनुष्ठान होता है। इसी पशु के साथ दुर्ब्राह्मणत्व की निवृत्ति के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिए अन्य पशु का भी एक तन्त्र से इसी समय अनुष्ठान करना चाहिए। जिसके पिता और पितामह ने सोमपान न किया हो, वह 'दुर्ब्राह्मण' कहलाता है। वह उक्त दोष की निवृत्ति के लिए जो अनुष्ठान करता है, वह दौर्ब्राह्मण्यनिवृत्त्यर्थ पशु है। तदुपरान्त तद्देवताक पशु पुरोडाश का तथा अन्याय जो पशु के अङ्ग हैं, उनका विधिपूर्वक अनुष्ठान कर उस वपा के संमार्जन के बाद वसतीवरी के ग्रहण के लिए बाहर जाकर जहाँ जल बहता है, उन वसतीवरियों को पात्र में ग्रहण करे सूर्यास्त से पहले। सोम का रस निकालने के समय रसकी वृद्धि के लिए जो जल उसमें छोड़े जाते हैं उनका नाम 'वसतीवरी' है। उन्हें लेकर जिस मार्ग से उनका आनयन किया गया, उसी मार्ग से उन्हें लाकर आग्नीध्र में उन्हें रखे। यहाँ तक चौथे दिन का कृत्य है।

पांचवें दिन का कृत्य

यही दिन 'सुत्या-दिन'[1] कहलाता है। इसी में सोम का अभिषव (रस निकालना), ग्रह-ग्रहण और उसके होम का अनुष्ठान होता है। यही प्रधान दिन है। उसमें चौथे दिन की आधी रात के बाद ही सुत्यासम्बन्धी कर्म करने के लिए यजमान के पुरुष ऋत्विजों को जगाते हैं। जागकर ऋत्विज लोग स्नान कर आज्यासादन पर्यन्त कर्म कर सोम को दो भागों में विभक्त कर उपरव के ऊपर रखे हुए ग्रावाओं (पत्थर-विशेष) के मुख में सोम डालें।

तदनन्तर प्रातःअनुवाक[2] के शस्त्र का होता पाठ करे। उसका

१—जिस क्रिया में (कर्म में) सोम गारा जाता है, वह सुत्या है।

२. रात्रि में सोते हुए पक्षी उषाकाल में जागकर बोलते हैं—भाँति-भाँति का कलरव करते हैं, उनके बोलने से पहले प्रातःकाल में होता द्वारा पठनीय ऋक्समूह प्रातःअनुवाक है (देखिये का० श्रौ० ६।१।१०, आश्व० श्रौ० ४।१३।१-६, तै० सं० ६।४।३।१, शतपथब्राह्मण ४।१२।३।१४-१५, ऐ० ब्रा० २।२।५)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पक्षियों के बोलने से पहले आरम्भ करना चाहिए। उस समय जागता हुआ ही अध्वर्यु होता के समीप में रहें। तदनन्तर प्रातःसवनीय पुरोडाशों का अग्नीध द्वारा निर्वाप होता है। उस में पाँच हविर्द्रव्य और पाँच देवता होते हैं। इन्द्र के लिए एकादश कपाल, हरिविशिष्ट इन्द्र के लिए भुने हुए जौ, पूषन्विशिष्ट इन्द्र के लिए करम्भ (आटे के बनाये हुए दीपकाकार पात्र), सरस्वतीविशिष्ट इंद्र के लिए दही, मित्रावरुणविशिष्ट इंद्र के लिए पयस्या हवि नियत हैं। इस प्रकार पुरोडाश आदि हवनीय द्रव्यों और पयस्या का प्रातः अनुवाक काल में ही अग्नीत् सम्पादन करे। तदनन्तर उन्नेता इन्द्र, वायु आदि के पात्रों को जुटाये। यथायोग्य पात्रों के जुटने पर चार ऋत्विक् सोम का अभिषव करने (सोम का रस गारने) के लिए दो अधिषवण-फलकों के चारों ओर बैठें। वहाँ बैठनेवाले ये हैं—अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, यजमान और ब्रह्मा। उत्तर की ओर अध्वर्यु और यजमान, दक्षिण तरफ ब्रह्मा, प्रतिप्रस्थाता, उन्नेता और नेष्टा। अभिषव (सोम गारने) के उपयोगी पदार्थों को ईषा के (सोमशकट के बीच पूर्व-पश्चिम लम्बायमान काष्ठविशेष के) मध्य से (हरिससे) लाना होता है।

तदनन्तर अध्वर्यु सोम गारने के फलक पर उपांशुसवन[1] नामक पाषाण को बीच में रखकर उसके ऊपर पाँच बार मांप कर सोम को छोड़े। वहाँ प्रातःसवन के लिए पर्याप्त आधे से अधिक सोम का प्रक्षेप करना (छोड़ना) चाहिए। यह अभिषव दो प्रकार का है। क्षुल्लकाभिषव और महाभिषव। पहले महाभिषव होता है। उसके अनन्तर क्षुल्लकाभिषव होता है। क्षुल्लकाभिषव के लिए पहले मापे हुए सोम से छोटे-छोटे लताखण्डों को हटाकर होता के चमस

---

१. जो पत्थर अध्वर्यु से गृहीत है वह उपांशुसवन नामक है, उपांशुग्रह के लिए सोम जिसमें गारा जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में स्थित जल से, जिसकी 'निग्राभ्या' संज्ञा है, कुछ जल लेकर उसे दूसरे पात्र पर अलग कर जतन से रखे।

महाभिषव

तदनन्तर महाभिषव होता है। अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और ग्रावा उसके कर्ता हैं। वे फलक पर मापकर रखे हुए सोम के चार भाग कर चारों उसे कूटने के लिए उस पर पत्थर से प्रहार करें। प्रहारों की संख्या की कोई इयत्ता नहीं है, वे अपरिमित वार होते हैं। इस तरह जब तक सोमरस निकले, तब तक निग्राभ्या छिड़क कर अभिषव करें, यह महाभिषव है।

क्षुल्लकाभिषव

तदनन्तर क्षुल्लकाभिषव होता है। क्षुल्लकाभिषव ही उपांशु-अभिषव कहलाता है। उसमें केवल एक अध्वर्यु ही कर्ता होता है। इस अभिषव में पहले अधिषवण फलक से हटाये गये सोमलताखण्डों को तथा अन्य पात्र में रखी हुई निग्राभ्याओं को होता के चमस में रखकर और सोम पर छिड़क कर आठ प्रहार किये जाते हैं। अभिषव के अन्त में प्रतिप्रस्थाता उपांशुग्रहपात्र[1] को अपने हाथ में ले।

१—ज्योतिष्टोम में उपांशु, अन्तर्याम, ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, आश्विन, शुक्र, मन्थी, आग्रयण, उक्थ्य, ध्रुव (यह वैकल्पिक है), दो ऋतु ग्रह, ऐन्द्राग्न, और वैश्वदेव, प्रातःसवन में ये तेरह ग्रह हैं। माध्यन्दिनसवन में शुक्र, मन्थी, आग्रयण उक्थ्य, तीन मरुत्वतीय, माहेन्द्र, दधिग्रह ये नौ ग्रह हैं। तृतीयसवन में आदित्य, सावित्र, वैश्वदेव, पात्नीवत, हारियोजन वे पांच ग्रह हैं। 'गृह्यते इति ग्रहः' इस कर्मव्युत्पत्ति से ग्रह का अर्थ सोम-रस है। 'गृह्यतेऽस्मिन् इति ग्रहः' इस व्युत्पत्ति से सोमरस का आधारपात्र ग्रह पद का अर्थ होता है। उनमें उपांशु अन्तर्याम, ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, आश्विन शुक्र, मन्थी, उक्थ्य, ये नौ के नौ ग्रह ऊखलाकार हैं। आग्रयण, उक्थ्य,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्वर्यु मुट्ठी से कूटे हुए सोम को निचोड़ कर उपांशुग्रह में ले। लेने समय पहले लिये हुए लता-खण्डों में से दो-दो खण्ड उपांशुग्रह के ऊपर रखे। फिर पूर्ववत् तीन बार अभिषव होता है। इसमें ग्यारह बार कूट कर पहले की भांति प्रतिप्रस्थाता द्वारा गृहीत पात्र में अध्वर्यु पात्र के ऊपर उससे रखे हुए दो सोमलताखण्डों को ले ले। इसी तरह तीसरी बार (पत्नी तृतीय सवन में) भी दस बार सोमलता पर प्रहार कर पूर्व की तरह सोमरस ग्रहण करे। अंगुलियों के मध्य धारण किये हुए छः सोम लताखण्डों को सोम में रखे। तदुपरान्त प्रति-प्रस्थाता के हाथ से अध्वर्यु ग्रह को लेकर दशा-पवित्र से परिमार्जन कर भूमि में रखे विना ग्रह को हाथ में लेकर ही हविर्धान से निकल कर खड़े-खड़े उपांशुग्रह का कुछशेष (छोड़कर हवन) करे। हवन करके आग्रयणस्थाली में वचे हुए सोमरस के एक भाग को छोड़कर अंशु-पात्र को ले। उसके समीप में उपांशुसवन को रखे, यह शुष्क अभिषव है।

यहीं पर ऋत्विज और यजमान का सन्ध्यावन्दन होता है। उसके बाद सूर्योदय होने पर अन्तर्याम नाम के ग्रह का उपांशु ग्रह के समान ग्रहण, होम और आसादन होता है। तदनन्तर धाराग्रहों का ग्रहण होता है। वे छः हैं। उनमें पहला इन्द्र-वायुदेवताक धारा ग्रह है। उसका

ध्रुव, आदित्य ये चार ग्रह मिट्टी की हांड़ी हैं यानी स्थालीग्रह हैं। ऋतुग्रह दो ही हैं, बारह नहीं हैं। बारह बार उनका ग्रहण होने के कारण बारह ग्रह यह व्यवहार है। ऐन्द्राग्न, वैश्वदेव, मरुत्वतीय और माहेन्द्र का ऋतुपात्र रूप से ही ग्रहण है। दधिग्रह का अग्निहोत्रहवणी से ग्रहण होता है। सावित्र, वैश्वदेव और पात्नीवत का उपांशु और अन्तर्याम में से अन्यतर रूप में ग्रहण है। हारियोजन का द्रोण-कलश से ग्रहण और होम है। अतः नौ उलूखल, चार पाकस्थाली, दो ऋतु-ग्रह (स्रुक् की सी मुखाकृतिवाले, जिनका दोनों ओर मुँह रहता है) ये सब मिलकर पन्द्रह पात्र हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दो बार ग्रहण होता है। पहले वायु के लिए ग्रहण कर धारा को तोड़कर फिर वहीं पर इन्द्र-वायु के लिए उसका ग्रहण होता है। इस प्रकार ग्रहण कर उसे 'खर' में रखे। तदुपरान्त मैत्रावरुण नामक ग्रह का, तदुपरान्त शुक्र का फिर मन्थी का ग्रहण होता है। उसके पश्चात् दो धाराओं से आग्रयण का ग्रहण होता है। आग्रयणस्थाली में ग्रहण समय में जो होम है उसकी एक धारा होता के चमसस्थ होती है और दूसरा धारा सोमस्थ होती है, इस तरह दो धाराओं से ग्रहण होता है। तदनन्तर उक्थ्य का, उसके पश्चात् ध्रुव का ग्रहण होता है। तदुपरान्त विकल्प से वैश्वानर ग्रह का ग्रहण होता है।

इस तरह ग्रहों में सोमरस का ग्रहण कर जब वे अपने-अपने स्थान पर रख दिये जायँ, तब अध्वर्यु आदि कटिप्रदेश में एक दूसरे से अन्वारब्ध (स्पृष्ट) हो झुककर हविर्धानमण्डप से बाहर निकलते हैं। तदनन्तर वे ही छः विप्रुड् होम (छः विन्दुओं का होम) कर वहिष्पवमानस्तोत्र के लिए चात्वालप्रदेश के प्रति जायँ। वहाँ जाकर बैठें।

उनके बैठने का प्रकार यह है-प्रस्तोता उत्तरमुख होकर बैठे, प्रतिहर्ता दक्षिण मुख, अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता उत्तर मुख होकर बैठें। उन सबके यथास्थान बैठ पवमान स्तोत्र का प्रारम्भ करने के लिए अध्वर्यु प्रस्तोता नाम के ऋत्विक् को तृण या कुशमुष्टि दे। वे सब स्तोत्र पढ़ें। वह स्तोत्र-'उपास्मै गायतां नर' इत्यादि नौ ऋचाओं से करणीय हैं। नौ ऋचाओं की आवृत्ति किये बिना ही पाठ किया जाता है। अन्य स्तोत्रों के समान आवृत्ति से गान नहीं होता। गान में प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता-इन तीनों का सम्बन्ध रहता है। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिये। उन सबके स्तुति करने पर उन्नेता आधवनीयस्थ सोम का पूतिभृत् नामक कलश में सिञ्चन करे। स्तोत्र की समाप्ति पर सवनीय हवि को सजाने के लिए या सवनीय पशु को लाने के लिए अध्वर्यु अग्नीत् और प्रतिप्रस्थाता को भेजे। तदनन्तर आग्नीध्रीय अग्नि के अङ्गारों को

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'धिष्ण्य' में आग्नीध्र रखे। तदनन्तर आश्विन[1] ग्रह का ग्रहण है। तदुपरान्त यजमान से ग्रहों का अवेक्षण करवाना चाहिये।

सवनीय पशु

सवनीय पशु के दो पक्ष हैं—स्तोमायन और पशु-एकादशिनी। चार सोमसंस्थाएँ हैं, यह पहले कहा जा चुका है। उनमें अग्निष्टोम संस्था में अग्निदेवतावान् एक ही सवनीय पशु होता है। उक्थ्य संस्था में दो पशु होते हैं—(१) अग्निदेवताक और (२) इन्द्राग्निदेवताक। षोडशी में पूर्वोक्त दो पशुओं के साथ इन्द्रदेवताक भेड़ तीसरा पशु है। अतिरात्र संस्था में पूर्वोक्त तीन पशुओं के साथ सरस्वतीदेवताक भेड़ी चतुर्थ पशु है[2]। इन पशुओं का ही 'स्तोमायन' नाम से सूत्रकार ने व्यवहार किया है (का० श्रौ० ९।८।६)। इस स्तोमायन के साथ पशु-एकादशिनी का विकल्प है अर्थात् स्तोमायन करे चाहे पशु-एकादशिनी करे। 'पशु-एकादशिनी' आग्नेय, सारस्वत, सोम्य, पौष्ण, बार्हस्पत्य, वैश्वदेव, ऐन्द्र और वारुण—ये ग्यारह पशु हैं इन पशुओं के नियोजन के लिए एक यूप अथवा ग्यारह यूप होते हैं। एक यूपपक्ष में उस यूप में अग्निदेवताक पशु का नियोजन कर उसके गले में दूसरे का, उसके गले में तीसरे का, उसके गले में चौथे का—यों सब का नियोजन करे। यदि ग्यारह यूप पक्ष हो तो अलग-अलग एक-एक यूप में एक-एक

१—दो कोनेवाला आश्विन ग्रह-पात्र, (देखिये का० श्रौ० ९।२।७)।

२—निष्कर्ष—अग्निष्टोम साम से समाप्त होनेवाले ज्योतिष्टोम में एक ही सवनीय पशु कर्तव्य है, उक्थ्य साम से समाप्त होनेवाले ज्योतिष्टोम में पहला अग्निदेवताक और दूसरा इन्द्राग्निदेवताक यों दो पशु करने चाहिए। षोडशिसाम से समाप्त होनेवाले ज्योतिष्टोम में अग्निदेवताक, इन्द्राग्निदेवताक और इन्द्रदेवताक—ये तीन पशु करने चाहिये। अतिरात्र साम से समाप्त होनेवाले ज्योतिष्टोम में तीन पूर्वोक्त और चौथा भेड़ी—ये चार पशु कर्तव्य हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पशु का नियोजन करना चाहिये। इस पक्ष में पशु-एकादशिनी भी नियत है। ग्यारह यूप गाड़ने के लिए वेदी की अभिवृद्धि भी सम्पादनीय है।

इस प्रकार सवनीय पशु का वपा-मार्जनपर्यन्त कर्म करने पर घिष्ण्यादि का उपस्थान होता है। इसीको 'सर्पण' कहते हैं। तदुपरान्त पहले से पकाये हुए पुरोडाश आदि प्रातःसवनीय हविर्द्रव्यों का हवन होता है। तदनन्तर ऐन्द्रवायव (इन्द्र-वायुदेवताक), मैत्रावरुण (मित्रावरुणदेवताक) और आश्विन (अश्विनीकुमारदेवताक) तीन द्विदैवत्य ग्रहों का हवन होता है। उन तीनों ग्रहों का हवन होने के उपरान्त उन्नेता नौ चमसों[1] में सोमरस-ग्रहण करे यानी सोमरस भरे। तदनन्तर शुक्रग्रह और मन्थिग्रह का होम होता है। शुक्रग्रह का अध्वर्यु और मन्थिग्रह का प्रतिप्रस्थाता होम करता है। वे उक्त ग्रह को हाथ में लेकर यूप के पास जाकर खड़े हो अपनी बद्धमुष्टि बाहुओं को जोड़ते हैं। यह बद्धमुष्टि बाहुओं को जोड़ना (अरत्निसन्धान) अन्य ग्रहों में नहीं है। तदुपरान्त उनके होम के लिए तत्पर होने पर चमसाध्वर्यव नौ चमसों को लेकर उनके (अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता के) साथ पूर्वमुख खड़े होकर होम करते हैं। इस प्रकार शुक्र और मन्थी नाम के ग्रहों का तथा चमसों का एक साथ होम होता है। उनमें ब्रह्मा, होता, उद्गाता और यजमान के चमसों का वषट्कार और अनुवषट्कार में होम होता है। अवशिष्ट चमसों का प्रथम वषट्कार में ही होम होता है। इसलिए वे पाँच के पाँच चमसाध्वर्यव अपने हाथ में रखे हुए चमसों का प्रथम वषट्कार में एक बार हवन कर पुनः उन्हें रस से भरने के लिए द्रोणकलश के निकट रखते हैं। तदनन्तर प्रशास्ता,

---

(१) होतृचमस, पोतृचमस, नेष्टृचमस, ब्रह्मचमस, ब्राह्मणाच्छंसिचमस, आग्नीध्रचमस, मैत्रावरुणचमस, अच्छावाकचमस, यजमानचमस ये नौ चमस हैं। उद्गाता, प्रतिहर्ता और प्रस्तोता का एक चमस है। कुल मिलाकर दस चमस होते हैं। इनमें अच्छावाकचमस में रसग्रहण आगे होगा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा और अग्नीत् के पाँचों चमसों का अध्वर्यु ही होम करे।

द्विदैवत्य ग्रह का भक्षण

तदनन्तर पूर्वोक्त द्विदैवत्य ग्रहों का होम होने पर अवशिष्ट का भक्षण होता है। कात्यायन शाखावाले माध्यन्दिनों में होमकर्ता ही पहले भक्षण करता है, उसके बाद वषट्कार करनेवाला भक्षण करता है। इसके अनन्तर अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता, होम और अभिषव के कर्ता होने के कारण, होमाभिषवनिमित्तक एक बार भक्षण करते हैं। तदनन्तर वषट्कर्ता का भक्षण, तदनन्तर समाख्यानिमित्तक भक्षण होता है। उद्गाता के चमस में उद्गाता ही भक्षण करता है, दूसरा नहीं। सभी जगह जिस-जिस ऋत्विग् आदि का जिस जिस चमस या ह से सम्बन्ध हो उसकी अनुज्ञा, जिसका नाम 'उपहव' और आकार अध्वर्युजी, अनुज्ञा दीजिये, ब्रह्मन्, अनुज्ञा दीजिये, यह है, लेकर और उस उससे 'आप उपहूत हैं' यों अनुज्ञात होकर ही तत् तत् ग्रह, चमस आदि का भक्षण करे। कारण अनुपहूत (अनाज्ञप्त) को सोम का पान नहीं करना चाहिये, ऐसा वचन है। तदुपरान्त भक्षण का प्रकार यह है—होता द्वारा समर्पित इन्द्रवायुदेवताक ग्रह को अध्वर्यु लेकर एक बार सशेष भक्षण कर, 'हिन्व मे' इस मन्त्र से सिर से लेकर पैर तक गात्रों का स्पर्श आदि कर, जल का स्पश कर, होता के चमस में अवशिष्ट ग्रह का एक भाग भर कर होता को ग्रह दे। होता उक्त ग्रह को लेकर अध्वर्यु से अनुज्ञप्त हो स्वसूत्रोक्त विधि से भक्षण करे। भक्षण कर अपने चमस का शेष एक भाग होता द्वारा सोम से सिक्त होने पर फिर अध्वर्यु का एक वार भक्षण होता है। इसी क्रम से मैत्रावरुण अश्विनीकुमारसम्बन्धी ग्रह भी अध्वर्यु और होता द्वारा भक्षणीय हैं। यहीं पर पुरोडाश आदि शेष हवि का भक्षण होता है।

Institute for Publication Kamala Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चमस का भक्षण

फिर शुक्रग्रह और मन्थिग्रह के अवशिष्ट अंशवाले होतृचमस में अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता का होमाभिषवनिमित्तक एक बार भक्षण होता है। किन्तु होता वषट्कार निमित्तक दो बार भक्षण करता है। इसी प्रकार ब्रह्मा और यजमान के चमसों में भी होता का दो बार भक्षण होता है। किन्तु प्रशास्ता आदि के पाँच चमसों में, चूँकि प्रशास्ता आदि वषट्कारकर्ता हैं, इसलिए अनुवषट्कार में उनका होमाभाव है, अतः उनका एक ही बार भक्षण होता है।

भक्षण का प्रकार इस तरह है—अध्वर्यु होता के चमस का होता और प्रतिप्रस्थाता से अनुज्ञा लेकर पहले भक्षण करे। तदनन्तर प्रतिप्रस्थाता अध्वर्यु और होता से पूछकर उसीका एक बार भक्षण करे। तदुपरान्त होता अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता से अनुज्ञा लेकर उसीका दो बार भक्षण करे। उसके बाद होता ब्रह्मा के चमस में ब्रह्मा से पूछकर दो बार भक्षण करे। ब्रह्मा भी होता से अनुज्ञा लेकर उसी चमस का दो बार भक्षण करे। इसी तरह ब्रह्मा यजमान, प्रशास्ता, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा और अग्नीत् के चमसों का उक्त चमसवालों से पूछकर भक्षण करे। उनमें यजमान के चमस में दो बार भक्षण, किन्तु औरों में एक-एक बार भक्षण करे। चमस-वाले भी अपने-अपने चमसों का पोता और अध्वर्यु की अनुज्ञा का ग्रहण-पूर्वक एक एक बार भक्षण करें। सर्वत्र सशेष भक्षण है, निश्शेष नहीं। फिर अन्त में होता अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता से अनुज्ञा लेकर समाख्या के लिए एक बार भक्षण करे। यही भक्षण 'महाभक्ष' कहा जाता है।

जिन-जिन चमसों में पुनः सोमरस का अभ्युन्नयन किया (सोमरस उड़ेला) गया उन उनमें तन्निमित्तक भक्षण करना चाहिये। यह भक्षण 'पुनरभ्युन्नीत-भक्ष' कहा जाता है। उसमें अध्वर्यु पाँच चमसों में होता से और उस उस चमसवाले से अनुज्ञा लेकर एक बार भक्षण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करे और वे सब चमसवाले होता और अध्वर्यु की अनुज्ञा लेकर दो वषट्कारों के निमित्त दो बार भक्षण करें। इसी भक्षण से समाख्या-भक्षण की भी प्रसङ्गवश सिद्धि होती है। इसमें भी पूर्व की भाँति सावशेष ही भक्षण होता है, निश्शेष नहीं। भक्षण के पश्चात् चमसों को पुनः भरकर उनको दक्षिण हविर्धान के पीछे नीचे भूमि में रखते हैं, उनकी 'नाराशंस' संज्ञा होती है। सर्वत्र भक्षण के बाद सभी भक्षण करनेवाले मन्त्रपूर्वक गात्रों का स्पर्श करें। तदुपरान्त अच्छावाकचमस का द्रोणकलशस्थ सोमरस से पूरण, होम, अनुज्ञा-ग्रहण और भक्षण पूर्ववत् करना चाहिये। अर्थात् जैसे पहले होता, प्रशास्ता आदि के चमसों का पूरण से लेकर होमपर्यन्त कर्म किया है, वैसे ही यहाँ पर भी करे।

ऋतु-ग्रह

तदनन्तर ऋतुग्रह नाम के ऋतुदेवताक ग्रहों का प्रतिपादन करते हैं। इनमें वसन्त आदि छः ऋतुएँ और उनके अन्तर्गत चैत्रादि मास देवता हैं। अतएव यद्यपि इनमें दो ही पात्र होते हैं, जिनमें एक अध्वर्यु के हाथ में और दूसरा प्रतिप्रस्थाता के हाथ में रहता है; तथापि अध्वर्यु द्वारा छः बार और प्रतिप्रस्थाता द्वारा छः बार—यों बारह बार के ग्रहण से बारह ग्रह होते हैं, ऐसा भी व्यवहार है। उनमें तेरहवें ऋतुग्रह का भी विकल्प से विधान है। उनमें प्रथम तथा अन्तिम दो ग्रहों का एक ही साथ ग्रहण करना चाहिये। यानी उनका ग्रहण, प्रवेश, निष्क्रमण और होम एकसाथ होने चाहिये। बीच में जो आठ ग्रह शेष रहते हैं यानी तीसरे से दशम तक, उनका व्यत्यास से ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् जिस समय अध्वर्यु ग्रह को पकड़ कर होम करता है उस समय प्रतिप्रस्थाता ऋतुग्रह का ग्रहण करे और जब प्रतिप्रस्थाता अपने ग्रह को पकड़ कर होम के लिए तैयार होता है तब अध्वर्यु आगे वाले ग्रह का ग्रहण करता है। अतः जिस समय अध्वर्यु अपने ग्रह को पकड़कर हविर्धान-मण्डप से बाहर निकलता है उस समय अध्वर्यु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होम कर पुनः भीतर प्रवेश करता है। भाव यह कि शुक्र ग्रह को हाथ में लेकर जब अध्वर्यु हविर्धान-मण्डप से बाहर निकलता है, तब प्रतिप्रस्थाता हविर्धान-मण्डप के दरवाजे पर खड़ा रहता हुआ ग्रहण के लिए हविर्धान-मण्डप में प्रवेश करता है। और जब अध्वर्यु आहवनीय में हवन करता है, तब प्रतिप्रस्थाता ग्रह को ग्रहण करता है। जब अध्वर्यु दूसरी बार ग्रह को ग्रहण करने के लिए हविर्धान-मण्डप में प्रवेश करता है तब प्रतिप्रस्थाता हविर्धान-मण्डप से बाहर निकलता है। जब अध्वर्यु पुनः ग्रहण करता है, तब प्रतिप्रस्थाता होम करता है। उनका मिलन दरवाजे पर होता है।

इसमें बारह ग्रहों का निश्शेष होम होता है और अन्य दो ग्रहों का सावशेष यह एक पक्ष है। सभी का सावशेष ही होम होता है, यह दूसरा पक्ष है। उस पक्ष में पूर्वशेष (बचे हुए पूर्व ग्रह) में उत्तर ग्रह का ग्रहण होता है। उनका होम होने पर दो पात्रों के शेष ग्रहों को एक पात्र में करके रिक्त (खाली) पात्र से प्रतिप्रस्थाता इन्द्राग्नि-देवताक ग्रह को ले। फिर ऋतुग्रह के भक्ष के लिए पात्र को लेकर अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता सद में बैठते हैं। यहाँ दस ग्रहों के सर्वहुतत्व पक्ष में यानी दस ग्रहों का सम्पूर्णतया होम होता है, इस पक्ष में अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता और होता क्रम से अपने से अन्य की अनुज्ञा लेकर एक-एक बार ही उसका भक्षण करें। अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता का सावशेष भक्षण होता है, किन्तु होता का निश्शेष भक्षण है, यह दोनों में अन्तर है।

सबका होम नहीं होता, इस पक्ष में भक्षण का प्रकार मैंने कात्यायन-श्रौतसूत्र के भक्षण-प्रकरण में टिप्पणी में विशद कर दिया है। वहीं से उसे जान लेना चाहिये। तदनन्तर पहले से गृहीत ऐन्द्राग्न चमस का पहले से आसादित नाराशंस चमसों के साथ भक्षणपर्यन्त कर्म करने पर वैश्वदेव ग्रह को ग्रहणकर, आसादनकर अग्नीध्र सवनीय हविर्द्रव्य का हवन करने पर वैश्वदेव स्तोत्र का आरम्भ करे। वैश्वदेव के स्तोत्र और शस्त्र की समाप्ति होनेपर चमसों के कम्पन के साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैश्वदेव ग्रह का हवन करने पर उसके साथ चमसों का भक्षण करना चाहिये। दस ग्रहों और चमसों का भक्षण होनेपर उन्हें धोकर अपनी-अपनी जगह पर रख दे। फिर उक्थ्य के तीन बराबर विभागकर उसे ग्रहण करे। उनमें एक भाग प्रशास्ता का, दूसरा ब्राह्मणाच्छंसी का और तीसरा अच्छावाक का है। विभक्त किये हुए उस उस उक्थ्य को लेकर तत् तत् सम्बन्धी शस्त्रों के समय दसों चमसों को अपने-अपने स्थान में ही भर दें। जिसका विग्रह हो यानी विभक्त करके ग्रहण हो, उसके चमस को पहले भरना चाहिए।

तदुपरान्त उन उक्थ्य और चमसों का हवन करने पर उस ग्रह और चमस के सब सम्बन्धियों की अनुज्ञा लेकर उस निमित्त से होनेवाला भक्षण पूर्ववत् निश्शेष, एकबार, दो बार इत्यादि तत् तत् भाग के अनुसार करें। इस प्रकार ग्रह और चमसों का अनुष्ठान होने पर 'हे प्रशास्ता, आप अनुज्ञा दीजिए' अध्वर्यु से यह कह कर उसके द्वारा अनुज्ञात होकर सद के मध्य से निकलें। इतना कर्म करने के उपरान्त प्रातःसवन कर्म समाप्त होता है।

माध्यन्दिन-सवन

माध्यन्दिन-सवन में 'लोकद्वारि' साम का गान करने पर यजमान के सहित सब ऋत्विक् प्रातःसवन की भाँति धिष्ण्य का उपस्थान आदि कर्म करें। तदनन्तर अध्वर्यु और यजमान द्वारा सदोऽभिमर्शन आदि कर्म करने पर माध्यन्दिनसवन के लिए सोम को प्रातःसवन की भाँति गारते हैं। सोम गारने पर अध्वर्यु ग्रहों को ग्रहण करे। ग्रहों में शुक्र, मन्थी, आग्रयण, मरुत्वतीय और उक्थ्य—इन पाँच ग्रहों का पहले ग्रहण होता है। तत्पश्चात् होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, प्रस्तोता और यजमान प्रातःसवन की नाईं समन्वारब्ध होकर (शास्त्रीय विशेष विधि से परस्पर सम्पर्क स्थापित कर यानी एक दूसरे का कच्छ पकड़ कर) माध्यन्दिन पवमान स्तोत्र का आरंभ करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के लिए जावें। प्रातःसवनवत् सब कृत्य करके सब सदस्यों के सद में बैठ जाने पर अध्वर्यु माध्यंदिन पवमान स्तोत्र का आरंभ करे। यदि सोम सप्रवर्ग्य[1] हो तो दधिधर्म-भक्षण पर्यन्त कर्म करने पर सवनीय पशुपुरोडाश का अनुष्ठान आरंभ करे। वहाँ पर भी यथोक्त विधि से अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा, आग्नीध्र, यजमान और मैत्रावरुण—इन छः व्यक्तियों द्वारा पशुपुरोडाश का भक्षण करने पर सवनीय हविर्द्रव्यों का हवन आदि आग्नीध्र को प्रातःसवन की नाईं, पयस्या को छोड़कर, करना चाहिये। तदनन्तर सब हविर्द्रव्यों का प्रातःसवन के तुल्य ही होमान्त कर्म होता है। तदुपरान्त उस इडा के ले जाकर होता के घिष्ण्य में रखकर शुक्र और मन्थी ग्रहों का होम से लेकर भक्षणपर्यन्त कर्म और सचमस होम करना चाहिये। उसमें सब कर्म प्रातःसवनवत् ही होते हैं। भक्षण में केवल नेष्टा के बाद अच्छावाक का निवेश है। निश्शेष भक्षित फिर सोमरस से भरे हुए चमसों को प्रातःसवन के तुल्य ही अपनी जगह पर रखकर सवनीय हवियों का वे ऋत्विक् भक्षण करें। तदुपरान्त ऋत्विजों को देने के लिए संकल्प के समय प्रतिज्ञात दक्षिणा का दान होता है। दक्षिणा-विभाजन की रीति का पहले ही निर्देश किया जा चुका है। उसके अतिरिक्त कुछ वस्त्र आदि भी, जिसका सूत्र में प्रतिपादन है, देना चाहिये। तदुपरान्त मरुत्वतीय ग्रह का ग्रहणकर, आसादनकर अध्वर्यु और होता पहले हुत मरुत्वतीय का भक्षण करें। तदुपरान्त होता द्वारा मरुत्वतीय शस्त्र का प्रारम्भ करने पर उसके सामने बैठा हुआ अध्वर्यु केवल एक ही बार प्रतिगर पढ़े। मरुत्वतीय शस्त्र के अन्त में प्रतिप्रस्थाता तीसरे कुण्ठ मरुत्वतीय ग्रह का ग्रहणकर अध्वर्यु के साथ होमस्थान में जाकर उसके द्वारा महामरुत्वतीय का हवन किये

१—प्रतिदिन सायं-प्रातः उपसद से पहले चन्द मण्डप में कर्तव्य कर्मविशेष प्रवर्ग्य कहलाता है। प्रथम यज्ञ में प्रवर्ग्याचरण का विकल्प है, इसलिए 'सप्रवर्ग्य' कहा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाने पर उसके पीछे कुण्ठमरुत्वतीय का होम करता है। तदुपरान्त यथाविधि सब लोग भक्षण करते हैं। कुण्ठमरुत्वतीय में प्रतिप्रस्थाता का ही भक्षण और उपहव होता है। उसके बाद नाराशंसचमस का भक्षण होता है। तदुपरान्त माहेन्द्र का ग्रहण कर आसादन कर पृष्ठ स्तोत्र का आरम्भ होता है। तदनन्तर पहले गारे हुए यानी रस निकाले गये सोम को फिर गारें। सोम के शुष्क होने तथा उसमें निग्राम्या के जल का सिंचन न होने से यह शुष्काभिषव कहा जाता है। इस प्रकार सोम को गार कर उद्गाता आदि के द्वारा पृष्ठ नामक स्तोत्र का पाठ होने पर आधवनीय कलश में गारे हुए शुष्क सोम को रखे। तदुपरान्त तृतीय सवनीय हविर्द्रव्यों का अग्नीत् होम करता है। इस में वरुणदेवत्य एककपाल पुरोडाश और सोम-देवत्य चरु अधिक हैं, शेष सब प्रातःसवन के तुल्य ही जानना चाहिये। पृष्ठ स्तोत्र की समाप्ति होने पर होता द्वारा पृष्ठ शस्त्र का पाठ होने पर पहले से आसादित माहेन्द्र ग्रह को लेकर उसका हवन कर उस समय कम्पित किए गये (हिलाये गये) नाराशंस चमसों के साथ भक्षण होता है। उस ग्रह में अध्वर्यु का एक बार सशेष भक्षण होता है, होता का दो बार और निश्शेष भक्षण होता है। उसके बाद चमसियों का उपहव के विना चमस भक्षण होता है। चमसों का सब लोगों को भक्षण करना चाहिये।

भक्षण कर धो पोंछकर ग्रह और चमसों के रख देने पर प्रातःसवन के तुल्य ग्रहों का हवन होता है। तदनन्तर प्रशास्ता से अनुज्ञात सब ऋत्विक् सद से बाहर निकलें। यह अनुज्ञापर्यन्त माध्यन्दिन-सवन है।

तृतीय-सवन

तृतीय सवन में पहला आदित्यग्रह है। आदित्यग्रह को ग्रहण कर, आदित्य-स्थाली से उसे ढक कर, होमस्थान में जाकर, उसका सशेष (कुछ अंश बचाकर) होम कर शेष अंश प्रतिप्रस्थाता को दे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तदुपरान्त 'लोकद्वारि' साम का गान यजमान करे। इसमें सवन का आदि अङ्गरूप सर्पण और सद का अभिमर्शन होता है, उसे अध्वर्यु आदि पूर्ववत् करें। तदुपरान्त आग्रयण और उक्थ्य ग्रह का ग्रहण करें। तत्पश्चात् समन्वारब्ध होकर (शास्त्रीय विशेष रीति से परस्पर एक दूसरे का कच्छ पकड़कर संस्पृष्ट होकर) आर्भव पवमान का आरंभ करने के लिए सद से निष्क्रमण करें। आर्भवपवमान की समाप्ति होने पर सवनीय हविर्द्रव्यों तथा पशु के अङ्गों का हवन होता है। तदनन्तर चमसों में द्रोणकलश से सोमग्रहण से लेकर भक्षणान्त कर्म होता है। पहले भक्षित, फिर आप्यायित (मन्त्रपूर्वक सोम रस से पूरण आप्यायन कहलाता है) चमसों को हविर्द्धान में (हविर्द्रव्यागार में) स्थापित करते हैं। तत्पश्चात् सब ऋत्विक् पिण्डपितृयज्ञ की भाँति यजमान के पितरों के लिए पिण्ड दें। तदनन्तर सावित्र (सवितृ-सम्बन्धी) ग्रह का ग्रहण किया जाता है। उसका स्थापन न कर निश्शेषहोमान्त कर्म करने पर अभक्षित उसी पात्र से महावैश्वदेव ग्रह का ग्रहण कर वैश्वदेव शस्त्र के अन्त में चमसों के कम्पन के साथ उसका हवन कर अध्वर्यु उसका एक बार सशेष भक्षण करे और होता दो बार भक्षण करे। अन्य चमसवाले भी उपहव किये बिना यानी अनुज्ञा लिये बिना सबका सब खा डालें।

तदुपरान्त सोमदेवत्य चरु का हवन होता है। उसके बाद प्रति-प्रस्थाता पात्नीवत चरु का होम करता है। तदनन्तर अग्निष्टोम नामक यज्ञायज्ञिय स्तोत्र का आरंभ होता है। अग्निष्टोम स्तोत्र के बाद होता द्वारा आग्निमारुत शस्त्रका पाठ करने पर ध्रुवग्रह को होता के चमस में उडेल कर (यदि वैश्वानर-ग्रह का ग्रहण किया हो तो उसे यजमान के चमस में उडेलकर) उसका हवन कर भक्षण होता है। अन्य सब चमसवालों का भी अपने-अपने चमस का एक बार में सब भक्षण होता है। तदुपरान्त प्रशास्ता द्वारा अनुज्ञात होकर होता प्रभृति सब-नान्तभूत निष्क्रमणरूप सर्पण करें। तत्पश्चात् अनुयाज आदि होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाजिन का होम और भक्षण होता है। तदनन्तर द्रोणकलश में हारियोजन ग्रह को निश्शेष लेकर उसमें भुने हुए जौ डालकर उन्नेता उसे अपने सिर पर रखकर उसीसे सबका होम करे। इसमें भक्षण का विकल्प है। भक्षणपक्ष में सर्वहोम होता है। तदनन्तर पत्नीसंयाजादि सब पाशुक कर्म होता है। इतने में तृतीय-सवन की समाप्ति हो जाती है।

अवभृथ

अवभृथ में ग्रह, चमस, स्थाली, पूतभृत्, आधवनीय आदि जितने पात्र सोम से सने हों उन्हें ले जाकर जहाँ अवभृथेष्टि करने की इच्छा हो उस जलस्थान में जाकर सब पात्रों को जल में छोड़ दे। अवभृथ के लिए जाते समय में आधे मार्ग में जल के निकट सामगान किया जाता है। वहाँ वरुणप्रघास के अङ्गभूत अवभृथ में जो अवभृथेष्टि की जाती है उसी तरह अवभृथेष्टि कर उसी में यजमानसहित सब ऋत्विक् स्नान कर देवयजनस्थल में आकर प्रायणीयेष्टि के तुल्य उदयनीयेष्टि करें। तदुपरान्त यजमान मित्रावरुणदेवत्य पशुयाग अग्नीषोमीय पशुयाग की भांति करे। यह पशु बाँझ गाय है। यज्ञ के बाद इसका वध किया जाता है, अतः इसकी 'अनूवन्ध्या' संज्ञा है। यदि बांझ गौ न मिले तो उसके बदले अनड्वान (साँड़), अथवा उसके अभाव में पयस्या[1] लेनी चाहिये। कलियुग में गवालम्भ निषिद्ध है, अतः गऊ और साँड़ का त्याग कर पयस्या का ही हविर्द्रव्य के रूप में अङ्गीकार करना चाहिये। तदनन्तर उदवसानीयेष्टि होती है। उसमें अग्निदेवत्य पञ्चकपाल पुरोडाश हविर्द्रव्य है। यदि उदवसानीयेष्टि करने की सामर्थ्य न हो तो उसके बदले 'उरु विष्णो' इससे चतुर्गृहीत आज्य से

१—गाय के उबलते हुए दूध में दही डाला जाय तो वह फट जाता है। उसका कुछ अंश द्रवरूप और कुछ घनीभूत हो जाता है जो द्रव रूप अंश है उसे पयस्या और आमिक्षा कहते हैं तथा घनीभूत अंश को वाजिन।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

म करना चाहिए। तदुपरान्त सायंकालिक अग्निहोत्र आदि नित्य या करनी चाहिए तथा एक हजार ब्राह्मण-भोजन का संकल्प रना चाहिए।

यह उस सोमयाग की विधि कही गई है जिसका यजमान ब्राह्मण और समाप्ति अग्निष्टोम साम से हो। यज्ञादि कर्मों में तीनों वर्णों अधिकार है, इसलिए क्षत्रिय और वैश्य भी इसके अधिकारी हैं, निर्विवाद है। इस प्रकार यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य अग्निष्टोम ग करना चाहें तो उसमें हविर्द्रव्य सोम नहीं होना चाहिए, किन्तु दवृक्ष के अङ्कुर अथवा फलों को लाकर उन्हें भली-भाँति पिसाकर धारण दही के साथ मिलाकर उसी पदार्थ को सोम के स्थान में कर वन करें। सोम में किए जानेवाले क्रयण आदि सभी संस्कार इसमें होते ही है। सोमपद घटित मन्त्रों का भी अनूह से (बेखटके) प्रयोग करना चाहिए। यजमान को इसीका भक्षण करना हिए। किन्तु ऋत्विक् सोम का ही भक्षण करें। इसलिए सोम के य वट के फल सहित अङ्कुरों का भी क्रयण आदि संस्कार करना हिए। उसको याज्ञिक लोग 'फलचमस' भी कहते हैं। यह याग र्वतोमुख भी किया जाता है। उसमें चारों दिशाओं में चार महा-दियाँ, चार ही देवयजन, केवल गार्हपत्य एक, चार आहवनीय और क्षिणाग्नियां होती-हैं। और ऋत्विक् प्रत्येक वेदी में सोलह होते हैं। व मिलाकर कुछ चौसठ ऋत्विक् होते हैं और एक यजमान। इसमें ज्ञिकों द्वारा पूर्व और दक्षिण की वेदियों में अग्निष्टोमसंस्था तथा श्चिम और उत्तर की वेदियों षोडशिसंस्था की जाती है।

द्वादशाह-यज्ञ

अब द्वादशाह के स्वरूप[1] का निरूपण किया जाता है। द्वादशाह

१—अहीन सत्रों में जो अहः शब्द या रात्रि शब्द प्रयुक्त है वह 'अहोरात्र' समुदाय का वाचक है। इससे द्वादशरात्र, द्वादशाह ये शब्द समानार्थ हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उभयात्मक है यानी वह सत्ररूप भी है और अहीनरूप[1] भी। सत्ररूप द्वादशाह का कर्ता केवल ब्राह्मण ही होता है। ब्राह्मणों में भी सभी एक ही फल चाहनेवाले या पृथक् पृथक् फल चाहनेवाले सत्रह से लेकर चौबीस तक अग्निहोत्री, जो अग्निष्टोमयाग कर चुके हों, इसके अधिकारी हैं। इसमें सभी यजमान ही होते हैं। सत्र से होनेवाला फल सभी को प्राप्त होता है। अतः इसमें दक्षिणा नहीं है। यद्यपि सब के सब इसमें यजमान ही होते हैं तथापि सत्रह यजमान वाले पक्ष में एक को 'गृहपति' मानना चाहिये, शेष सब ब्रह्मा आदि का कृत्य करते हैं और गृहपति यजमान का काम करता है। चतुर्विंशति यजमान होते हैं—इस पक्ष में सोलह पुरुष ऋत्विक् आदि का काम करते हैं। शेष ८ गृहपति (यजमान) का कार्य करते हैं। इसमें ऋत्विक् सत्रह से कम नहीं होते और चौबीस से अधिक नहीं होते। सभी लोग सत्रोपयोगी अपने द्रव्यों को बराबर बराबर भाग में इकट्ठा कर उनसे यज्ञ करें। दीक्षादि यजमान कार्य सभी का समान रूप से होता है।

अहीनरूप द्वादशाह में एक, दो या बहुत से यजमान होते हैं। उसमें अग्निष्टोम के तुल्य अध्वर्यु आदि ऋत्विक् ही कार्यकर्ता होते हैं। अतएव इनकी दक्षिणा भी होती है। दक्षिणा कुछ अधिक हजार गऊ है। फल यजमानों को ही प्राप्त होता है।

सत्ररूप द्वादशाह से गवामयनादि सत्रों में धर्मातिदेश होता है। अहीन से द्विरात्रादि एकादशपर्यन्त अहीनों में धर्मातिदेश होता है। अहीनों में जिन्होंने पहले यज्ञानुष्ठान किये हों उन्हींका अधिकार हो ऐसा नियम नहीं है। सत्र और अहीन दोनों में ही बारह दीक्षाएँ

१—ब्राह्मण द्वारा किया जानेवाला एक प्रकार का सोमयाग जिसमें दक्षिणा न हो, जिसमें उभयतः (आदि और अन्त में) अतिरात्रसंस्था हो वह सत्र है। तीनों वर्गों से अनुष्ठेय सदक्षिण अन्त में अतिरात्रसंस्थावाला एक, दो, तीन, चार आदि यजमानों से किया जानेवाला सोमयाग 'अहीन' है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बारह उपसद और बारह सुत्याएँ होती हैं, अतएव यह यज्ञ छत्तीस दिनों में समाप्त होता है (देखिए जै० ११।३)। यह साग्नि चितिवाला और निरग्नि चितिवाला दोनों तरह का होता है। इसमें सबकी अग्नियों को एकत्र करके ही कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। दीक्षा के दिन सभी गृहपति आदि अपनी-अपनी अग्निओं का अरणियों में समारोप कर देवयजनस्थल में आकर अरणिमन्थन कर पृथक्-पृथक् गार्हपत्य खर में अग्नि की स्थापना करे। तदुपरान्त ब्रह्मा आदि अपने गार्हपत्य से एक-एक उल्मुक (जलता हुआ काठ, लुआठी) लेकर गृहपति के गार्हपत्य में छोड़ें। इस प्रकार सर्वसाधारणीकृत गार्हपत्य से आहवनीय और दक्षिणाग्नि को पृथक् करें। अतः गार्हपत्य पृथक् और आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि एक हैं। यहाँ पर और भी दो पक्ष हैं, मगर विस्तार भय से उनका उल्लेख नहीं किया गया।

साग्निचित्यनुष्ठान पक्ष में पहले प्रजापतिदेवत्य इष्टकापशु का अनुष्ठान करना चाहिए। उसका दीक्षा के दिन ही अनुष्ठान करना चाहिए अथवा अपने समय में। स्वयं ही प्रवृत्ति होने के कारण इसमें ऋत्विजों का वरण नहीं होता। इसमें दीक्षा में विशेषता है। वह यह कि सभी यजमान हैं, अतः सब को दीक्षा लेनी चाहिये। ज्योतिष्टोम में अध्वर्यु ही दीक्षाकर्ता है, यहाँ अध्वर्यु और उसके पुरुष दीक्षाकर्ता हों। दीक्षा में यह क्रम है—अध्वर्यु पहले गृहपति को दीक्षित कर ब्रह्मा, उद्गाता और होता को दीक्षित करे। तदुपरान्त अध्वर्यु के पश्चात् प्रतिप्रस्थाता अध्वर्यु, ब्राह्मणांच्छंसी, प्रस्तोता और मैत्रावरुण को दीक्षा दे। तदनन्तर नेष्टा प्रतिप्रस्थाता, अग्नीत्, प्रतिहर्ता और अच्छावाक को, दीक्षित करे फिर उन्नेता को कोई दूसरा दीक्षित करे।

जो जिस को दीक्षित करता है वह उसके अनन्तर उसकी पत्नी को भी दीक्षित करे। शेष सब विधि ज्योतिष्टोम के तुल्य होती है। कहीं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहीं थोड़ा बहुत अन्तर है। साग्निचित्य द्वादशाह में उखासंभरण इष्टकोपधानादि सब कर्म चयनवत् होते हैं।

सवनीय पशुओं में चमस से विशेषता है। प्रतिदिन इन्द्राग्नि देवत्य एक पशु होता है, या स्तोमायन होता है अथवा पशु-एकादशिनी होती है। अथवा प्रतिदिन एक एकादशिनी के एक एक पशु के अनुष्ठान से एकादश दिनों में अनुष्ठान होता है। बारहवें दिन फिर अग्नि देवत्य पशु का अनुष्ठान होता है। बारह दीक्षाओं के अनन्तर उपस के दिनों में जिस किसी दिन सोमक्रयण होता है।

सुत्या में विशेष है। उसमें दिनों की सज्ञा की जाती है। प्रायणीय[1] पहला दिन है (प्रथमतः आरंभ होता है, इसलिए उसका नाम प्रायणीय है)। तदनन्तर पृष्ठ्यषडह फिर तीन छन्दोम, तदनन्तर अतिवाक्य फिर उदनीय और अतिरात्र होते हैं। उनमें पहला दिन अतिरात्रसंस्थावाला है, दूसरे से लेकर सातवें दिन तक छः दिन पृष्ठ हैं, क्योंकि रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत नाम के साम छहों दिनों में पृष्ठ नामक स्तोत्र के साधन हैं, इसलिए छः दिन पृष्ठ हैं ऐसा व्यवहार होता है।

द्वादशाह में अन्तिम द्वादशाह को छोड़कर अन्य पत्नीयाजा ग्यारह दिन होते हैं। अवभृथ स्नान दीक्षा मोचनार्थ होता है अ वह सबके अन्त में होता है। षडहों (छः दिनों) में दूसरा अ तीसरा दिन उक्थ्यसंस्थावाला है, चौथा दिन षोडशिसंस्थावाला है पांचवा और छठा दिन उक्थ्यसंस्थाक है, तदनन्तर तीन दि 'छन्दोम' कहे जाते हैं। तत्पश्चात् ग्यारहवां दिन अत्यग्निष्टोमसंस्थाव है तथा उदयनीय नाम का बारहवां दिन अतिरात्रसंस्थावाला है।

इस द्वादशाह में तीन अतिग्राह्य, षोडशी और दो अश्वदाभ्यों ग्रहण अधिक है। यह द्वादशाह 'व्यूढ' और समूढ भेद से दो प्रक

१—'प्रकृष्टम् अयनम् आरंभो यस्मिन् दिने' इस व्युत्पत्ति से प्रायण शब्द द्वादशाह के प्रथम दिन का वाचक है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का है, और व्यूहन अग्रता में होता है, देखिये 'व्यूहनं चाग्रतायाम्' (जै० १०।५।३३-३४)। वह इस प्रकार है—ऐन्द्रवायव अग्रवाले प्रायणीय, उदयनीय, दशम दिन, तदुपरान्त नौ दिनों में से ऐन्द्रवायवाग्र प्रथम दिन, फिर शुक्राग्र, फिर आग्रयणाग्र, फिर ऐन्द्रवायवाग्र, तदनन्तर शुक्राग्र, फिर आग्रयणाग्र, फिर ऐन्द्रवायवाग्र, तदनन्तर शुक्राग्र, पुनः आग्रयणाग्र (देखिये आप० श्रौ० २१।२४।२-३)। यही ऐन्द्रवायवादि का क्रमशः इसमें समूहन होने से यह त्र्यनीका साम्य से जिसमें ऊढ है वह समूढ़ कहा जाता है। वह जहाँ विषमता से ऊढ होती है वह व्यूढ है। व्यूढ का प्रकार यों है—ऐन्द्रवायवाग्र प्रायणीय और उदयनीय, तदनन्तर अन्य दस दिनों में ऐन्द्रवायवाग्र प्रथम दिन, तदनन्तर शुक्राग्र, तदुपरान्त दो आग्रयणाग्र, फिर ऐन्द्रवायवाग्र, तदनन्तर दो शुक्राग्र, फिर आग्रयणाग्र, तदुपरान्त ऐन्द्रवायवाग्र (देखिये आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र २१।२४।५)। इसमें एक हजार ब्राह्मण-भोजन होता है।

गवामयन सत्र

अब गवामयन का निरूपण किया जाता है। गउओं द्वारा अनुष्ठित होने से यह 'गवामयन' कहलाता है 'गोभिरनुष्ठितत्वाद् गवामयनम्' ऐसी व्युत्पत्ति है। उसकी समर्थक आख्यायिका तैत्तिरीय संहिता (७।४।८), ऐतरेय ब्राह्मण (४।३।३) तथा ताण्ड्य ब्राह्मण (४।११) में पाई जाती है। इसका माघकृष्णा अष्टमी, माघशुक्ल एकादशी, फाल्गुन पौर्णमासी अथवा चैत्रपूर्णिमा को आरम्भ होता है। आरम्भ दिन से लेकर बारह दीक्षाएँ और बारह उपसद होते हैं। इस प्रकार चौबीस दिन होते हैं। आरम्भ दिन में ही इष्टका पशु और उखा-संभरण होते हैं। तदुपरान्त अन्तिम उपसद के दिन अग्नीषोमीय पशु का अनुष्ठान कर उसी दिन सुत्या का आरंभ करना चाहिए। इस में सुत्याएँ ३६१ तीन सौ एकसठ होती हैं (देखिए ता० ब्रा० १२।३।३।११)। महाव्रत में अतिग्राह्य नाम के तीन ग्रहों का ग्रहण होता है। इस याग में मार्जालीय के दक्षिण भाग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में वेदी के बारह अनियत जाति के स्त्री-पुरुष मैथुन करें। इसमें तीन अनूबन्ध्या होती है। सपत्नीक यजमान का शिखासहित मुण्डन होता है। तदनन्तर अग्नियों का विभागकर सब दीक्षित पुरुष अलग-अलग पृष्ठ-शमनीय[1] नामक अग्निष्टोम करते हैं। शेष कृत्य द्वादशाहवत् होता है।

इस में एक सौ अस्सी १८० सुत्याएँ पूर्वपक्ष है, इसी तरह एक सौ अस्सी १८० उत्तर पक्ष है (ऐ० ब्रा० १।२।३।१-२)। दोनों पक्षों के बीच में विषुवान् नाम का दिन है। संवत्सर साध्य होने (संवत्सर में पूरा होने) के कारण संवत्सररात्र भी इसका नाम है। इस तरह बारह दीक्षा और बारह उपसद के चौबीस दिनों के साथ कुल ३८५ तीन सौ पचासी दिनों में यह सत्र अनुष्ठित होता है। इसमें प्रतिदिन तीन सवनों से अधिक ग्रह, चमस आदि और स्तोत्र, शस्त्रादि 'प्रकृति' के अनुसार होते ही हैं। इसमें जो विशेष विधि होती है, केवल उसी का निरूपण यहाँ पर किया जाता है। इसमें (गवामयन में) दिनों की रचना इस प्रकार है—अग्नीषोमीय पशु के अनुष्ठान के बाद प्रायणीय प्रथम दिन अतिरात्रसंस्थाक है (देखिए ता० ब्रा० ४।१।४)। तदुपरान्त चतुर्विंश अग्निष्टोमसंस्थावाला या उक्थ्यसंस्थावाला द्वितीय दिन है। उस दिन जितने स्तोत्र होते हैं उनमें चतुर्विंशस्तोमकता रहती है; इसलिए वह दिन चतुर्विंश कहा जाता है (देखिये ऐ० ब्रा० ४।२।६)। ये दो दिन इसमें पहले महीने में नहीं गिने जाते, किन्तु छठे महीने के मध्य में गिने जाते हैं। पर अनुष्ठान का क्रम ऐसा ही है। तदनन्तर चार षडह अभिप्लव[2] होते हैं। तदनन्तर त्रिवृत् आदि छः स्तोमों से साध्य एक

१—रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत ये छः पृष्ठ हैं। सत्र में नियुक्त श्रम से श्रान्त-क्लान्त हुए उक्त पृष्ठों का जो शमन करता है वह पृष्ठ-शमनीय कहलाता है।—देवयाज्ञिक।

१—पहली अग्निष्टोम, तदनन्तर चार उक्थ्य, फिर छठा अग्निष्टोम—इन छः दिनों की 'अभिप्लव' संज्ञा है।

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृष्ठ्य षडह[1] होता है। इस प्रकार पांच षडहों से ३० दिनों का एक सावन महीना होता है। इसी तरह उन षडहों की आवृत्ति से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम मास का सम्पादन करना चाहिये। छठे महीने में पहले के तीन अभिसव नामक षडह, एक पृष्ठ्य षडह, सब मिलाकर चौबीस होते हैं। तदनन्तर अग्निष्टोम संस्थावाला अभिजित् नामक यज्ञ होता है। तदुपरान्त स्वरसाम[2] नाम के तीन दिन होते हैं, वे अग्निष्टोम संस्थावाले या उक्थ्य संस्थावाले होते हैं। इस प्रकार सब जोड़कर अट्ठाइस हुए। आदि के दो दिनों (जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है) के साथ तीस दिन का एक महीना हुआ। ये छः मास पूर्व पक्ष (पंख) है। तदनन्तर विषुवान् नाम का अग्निष्टोम संस्थावाला दिन होता है। यह गवामयन का मध्य है। इस दिन की महीनों के बीच में या वर्ष के बीच में गणना नहीं होती। उसके बाद उत्तर पक्ष (पंख) का आरंभ होता है। उसमें जिस क्रम से पूर्व पक्ष में दिनों की रचना हुई थी उसके विपरीत क्रम से उत्तर पक्ष में दिनों की कृप्ति (सजावट के साथ स्थापना) होती है, वह यों है—पहले प्रतिलोम विपरीत क्रम वाले तीन स्वरसाम तदनन्तर विश्वजिन्नामका अग्निष्टोम, फिर प्रतिलोमतः त्रयस्त्रिंश साम[3] से आरम्भ होनेवाला पृष्ठ्य षडह होता है। तदुपरान्त तीन अभिसव नाम के षडह होते हैं। सब को जोड़ देने से अट्ठाइस दिन हुए। सत्र के अन्तिम दिनों में कर्त्तव्य महाव्रत और उदयनीय इस महीने में गिने जाते हैं। सब को मिलाकर एक मास हुआ। दूसरे मास में विपरीत क्रम से

१—त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, त्रिणव, त्रयस्त्रिंश—ये छः स्तोम प्रथम दिन प्रभृति छः दिनों में क्रम से करने चाहिये।

२—"यज्ञायज्ञा" इस योनि में उत्पन्न चार स्वर नाम के साम जिनमें होते हैं वे स्वरसाम कहलाते हैं।

३—इसमें कहे गये छः स्तोमों का विपरीत क्रम से त्रयस्त्रिंशत् से लेकर अनुष्टार होता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पहले त्रयस्त्रिंशत् से आरम्भ होनेवाला एक पृष्ठ्य षडह, तदनन्तर चा
अभिप्लव नाम के षडह--सब को मिलाकर एक दूसरा महीना हुआ
इसी प्रकार तीसरा, चौथा और पाँचवाँ मास होता है। छठे महीने
पहले तीन अभिप्लव नाम के षडह होते हैं। तदुपरान्त उक्थ्य संस्थावाल
गोष्टोम नाम का दिन होता है। तत्पश्चात् आयुष्टोम नामक दि
होता है, उसकी समाप्ति उक्थ्यसाम से होती है। तदनन्तर द्वादशाहि
होता है (देखिये का० श्रौ० १२।३।१,२१-२२)। प्रथम और उत्तम दि
से रहित दशरात्र इन सब के जोड़ से छठा मास पूरा हुआ। इस
उपरान्त महाव्रत[1] (यज्ञ का अन्तिम) दिन और उदयनीय नाम
सत्र का अन्तिम दिन होता है (ऐ० ब्रा० ४।२।८, आप० श्रौ० २१।१५)
इन दो दिनों की पहले महीने में गणना नहीं की गई।

वाजपेय-यज्ञ

सम्प्रति वाजपेययज्ञ का स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है। उस
कर्ता केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय ही हैं। इसमें वैश्य का अधिकार न
है। परन्तु इससे अतिरिक्त सप्तसंस्थान्तर्गत वाजपेय में वैश्य का भ
अधिकार है। इसका काल शरदृतु है। इसमें दोनों ओर बृहस्पति
सव होता है। इस प्रकार आश्विन पूर्णिमा में वाजपेय-सुत्या
अनुष्ठान होता है, उससे पहले भाद्रपद पूर्णिमा और कार्तिक पूर्णि
में दो बृहस्पति-सव करने चाहिए। यह एक पक्ष है। बृहस्पति-सव
स्थान में अग्निष्टोम साम से समाप्त होनेवाला ज्योतिष्टोम होता है,
दूसरा पक्ष है। अथवा वाजपेय के बारहों शुक्लपक्षों में बारह यागों
अनुष्ठान होता है। उनमें छः अयुग्म (१ म, ३ य, ५ म, ७ म, ९
और ११ श) शुक्लपक्षों में अग्निष्टोम साम से समाप्त होनेवा
ज्योतिष्टोम होता है। छः युग्म (२ य ४ र्थ, ६ ष्ठ, ८ म, १० म

१—'महानवर्तिष्ट अनेन कर्मणा इति महाव्रतम्।' (देखिये तै० ब्रा
सायण १।२।६)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

२श) शुक्लपक्षों में तो क्रमशः पृष्ठ्य-षडहसम्बन्धी दिन क्रम से यन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत नामक छः सामों से साध्य स्तोत्र एक-एक दिन में होते हैं। त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, त्रिंशि, त्रयस्त्रिंशत्रूप स्तोम भी क्रमशः एक एक दिन में होते हैं। वाजपेय के अनन्तर युग्म (सम) शुक्लपक्षों में ज्योतिष्टोम ही होता है। अयुग्म (विषम) छः शुक्लपक्षों में पूर्वानुष्ठान से विपरीत क्रम से पृष्ठ्य-स्तोत्रों का अनुष्ठान होता है, यह तीसरा पक्ष है। अथवा वाजपेय के आगे नौ शुक्लपक्षों में या पौषी पूर्णिमा से लेकर भाद्रपद की पूर्णिमा तक राजसूय के अन्तर्गत पवित्र, अभिषेचनीय, दशपेय, केशवपनीय, व्युष्टिद्विरात्र, क्षत्रधृति, त्रिष्टोम और ज्योतिष्टोम का क्रमशः अनुष्ठान होता है। उसके बाद उन्हीं का विपरीत क्रम से अनुष्ठान होता है, यह चौथा पक्ष है। इनके पशु आदि, ग्रह-ग्रहण आदि कात्यायन-श्रौतसूत्र प्रभृति ग्रन्थों में अपने-अपने प्रकरण में कहे गये हैं, वहीं देख लेना चाहिये।

कार्तिक की अथवा आश्विन की पूर्णिमा, अमावास्या को राजसूय-सुत्या करनी चाहिये। कार्तिक अमावास्या के दिन सुत्या होती है, इस मास में आश्विन शुक्ल दशमी को मातृपूजा आदि कृत्य करने चाहिये। व्रत से लेकर सात दीक्षाएँ होती हैं। कार्तिक कृष्ण द्वादशी के दिन वैश्वदेवीयेष्टि होती है, उसी दिन सोम का क्रयण होता है। सुराद्रव्य का भी उसी दिन क्रयण होता है। सुरा के साधनभूत पदार्थ और उसको बनाने की रीति सौत्रामणी में कही गई है। तदुपरान्त तीन दिनों में सायंकाल और प्रातःकाल प्रवर्ग्य और उपसद होते हैं। चतुर्दशी को अग्नीषोमीय पशु और सत्रह मुट्ठी बंधे हाथ का एक यूप होता है। उसे सत्रह कपड़ों से लपेटा जाता है। पूर्णिमा के दिन पात्र-योजन में षोडशी पात्र अधिक है। सुराग्रह के लिए सत्रह पात्र होते हैं, बाईस सवनीय पशु होते हैं। उनमें पहला आग्नेय, दूसरा ऐन्द्राग्न, तीसरा रुद्रदेवत्य, चौथा मेषी (भेड़ी) सरस्वतीदेवत्य, पांचवी वशा (बांझ) गौ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसके बदले बकरी। तदनन्तर काले, सींगरहित, प्रजननस
सत्रह प्राजापत्य (प्रजापतिदेवत्य) पशुओं का अनुष्ठान होता
आग्नेय आदि पांच पशुओं की वपा का देवता-भेद होने से पृ
पृथक् होम होता है। सत्रहों प्राजापत्य पशुओं की वपा का एक
बार होम होता है। सवनीय हविर्द्रव्य के होम के समय ध
(भुने जौ) आदि पांच हविर्द्रव्यों के साथ सत्रह सकोरों से नपे
बृहस्पतिसम्बन्धी चरु का होम करना चाहिये। दक्षिणा देने के
मरुत्वतीय होम के अनन्तर महेन्द्र-ग्रह से पहले आग्नीध्रीय के नि
अध्वर्यु रथ के ऊपर दूसरा रथ रखकर मन्त्र से उसे उतार कर,
धुरा में पकड़कर वेदी के पास लाकर, उसमें चार घोड़ों को जोत
इसी तरह सोलह रथों में चार चार घोड़ों को जोते। तत्पश्चात् आग्
के पीछे दो खम्भों को पूर्व और पश्चिम की ओर गाड़कर उनके
सत्रह काठ की कीलों से युक्त एक काठ को पूर्व की ओर
(अगला भाग) करके रखकर उन कीलों में सत्रह दुन्दुभियों
क्रम से बांधे। तदनन्तर सबको डंडे से बजाये। तदुपरान्त एक
चात्वाल (गर्त) और उत्कर से उत्तर दिशा में सत्रह बाणों को फे
उनमें पहले एक बाण को जोर से फेंक कर जितनी दूर पर वह पड़ा
वहाँ जाकर वहाँ खड़ा होकर दूसरे बाण को छोड़े। इसी तरह स
बाणों को छोड़े। सत्रहवें बाण के गिरने की जगह अवधिभूत उदु
की शाखा गाड़ दे। तदनन्तर यजमान रथ पर चढ़े। और लोग
अपने अपने रथों पर चढ़ें। तदुपरान्त पहले गाड़ी हुई उदुम्बर श
की ओर सब अपने अपने रथों को दौड़ावें। इसी को वाजिप
(अश्वों को दौड़ाना) कहते हैं। उनके जाते समय ब्रह्मा रथच
ऊपर बैठकर सामगान करता है। वहाँ जैसे यजमान आगे
रहे, वैसे चलना चाहिये। तदनन्तर सब उस उदुम्बर शाखा
परिक्रमा कर देवयजन-स्थल में लौट आवें। उनके आने पर
रथचक्र से उतरे। तदुपरान्त दुन्दुभियों को उतारे। उसके बाद

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न अपने रथ को अध्वर्यु के लिए देकर अवशिष्ट रथों में जो जो
जिसका हो, वह उसी को दे दें।

तदुपरान्त मधुग्रह और सौर-ग्रहों का होम होता है। तत्पश्चात्
मान और पत्नी पहले से बनाकर तैयार की हुई, यूप के ऊपर
ड़ी की हुई, कच्चे काठ से बनाई हुई इक्कीस सीढ़ियों से युक्त सीढ़ी
र चढ़ते हैं। तदुपरान्त नीचे खड़े हुए यजमान के पुत्र, पौत्र आदि
त्रह पीपल के पत्तों में बंधे हुए खारी मिट्टी के ढेलों से यजमान को
वें। यही स्वर्गारोहण कहलाता है।

तदनन्तर किसी एक अन्न को छोड़कर ग्रामीण और आरण्य सब
न्नों का होम सात मन्त्रों से सात बार होता है। होम से बचे हुए
न्न से आसन्दी (मञ्चिका) पर बैठे हुए यजमान का अभिषेक
ोता है। तत्पश्चात् आज्य की आहुतियाँ होती हैं। तदनन्तर वशा का
वन आदि होता है। यहाँ उदयनीया के स्थान पर त्रैधातवीया इष्टि
ोती है।

राजसूय-यज्ञ

अब राजसूय-यज्ञ का संक्षेपतः दिग्दर्शन किया जाता है। राजसूय
ज्ञ में केवल अभिषिक्त (जिसका राज्याभिषेक हुआ हो) क्षत्रिय का
ी अधिकार है, ब्राह्मण और वैश्य का इसमें अधिकार नहीं है। इसमें
नुमत्यादि इष्टियाँ, मल्हादि पशुयाग और पवित्रादि सोमयाग होते
ें। वे सब के सब समान रूप से प्रधान हैं, उनमें परस्पर अङ्गाङ्गि-
ाव या गौणमुख्यभाव नहीं है। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को राजसूय
ज्ञ का आरंभ होता है। उसमें पहले पवित्र नाम का सोमयाग होता है।
समें चार दीक्षाएँ, तीन उपसद, एक सुत्या होती है। आठ दिनों में
रा होनेवाले इस याग की फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को समाप्ति होती है।
स याग का कर्ता राजा होता है। राजा के लिए सोमभक्षण निषिद्ध
है, इसलिए वट (बड़) के फलसहित अङ्कुर लेकर उनका सोम के साथ
क्रयण आदि संस्कार कर दही के साथ मिलाकर चमस भरने के समय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यजमान के चमस में उसी रस का ग्रहण करे। होम के समय उसका हवन कर उसी का भक्षण करना चाहिये। अन्य चमसों में सोमरस का ग्रहण, उसी का होम और भक्षण करना चाहिये। इसलिए यहाँ पर फल-चमस (वट के अङ्कुर) से बनाया हुआ रस यजमान का ही है, अन्य ऋत्विगादि का नहीं है। अवभृथ के अन्त में तीन अनूबन्ध्या होती हैं। उदवसानीय इष्टि के स्थान में त्रैधातवीया इष्टि होती है।

उसके बाद दशमी के दिन अनुमतीष्टि होती है। उसमें अष्टाकपाल पुरोडाश हविर्द्रव्य है, एकादशी के दिन अग्नावैष्णव द्वादश कपाल पुरोडाश, द्वादशी के दिन अग्नीषोमीय एकादश कपाल, त्रयोदशी के दिन ऐन्द्राग्न द्वादशकपाल पुरोडाश होता है। चतुर्दशी के दिन यवाग्रयण और व्रीह्याग्रयण ये पांच इष्टियाँ होती हैं। तदनन्तर फाल्गुन की पूर्णिमा को राजसूयान्तर्गत चातुमास्य का प्रयोग होता है। उसमें पहले पूर्णिमा के दिन वैश्वदेव पर्व होता है। तदनन्तर चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से लेकर चैत्र की अमावस्या तक प्रतिदिन पौर्णमासेष्टि प्रकृतिवत् होती है। तदुपरान्त चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से लेकर चैत्र की पूर्णिमा तक प्रतिदिन दर्शेष्टि पिण्डपितृयज्ञ को छोड़ कर प्रकृतिवत् होती है। प्रतिपदा को तो राजसूय-इष्टि के बाद नित्य दर्शपूर्णमासेष्टि और नित्य पिण्डपितृयज्ञ होता है। तत्पश्चात् वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ के महीनों में इसी प्रकार कृष्ण पक्षों में पौर्णमासेष्टि और शुक्ल पक्षों में दर्शेष्टि होती है। उन महीनों में प्रतिपदा के दिन नित्येष्टियाँ भी करनी चाहिये। यदि यजमान प्रतिवर्ष चातुर्मास्य का अनुष्ठान करता हो, तो तत् तत् वर्ष के अवसरों पर उन उन नित्य पर्वों का पहले अनुष्ठान करके ही बाद को राजसूयसम्बन्धी पर्वों का अनुष्ठान करना चाहिये।

आषाढ़ की पूर्णिमा को वरुण-प्रघास होते हैं। तब से आरम्भ कर कार्तिक की पूर्णिमा पर्यन्त प्रतिदिन पूर्ववत् ही दर्शपूर्णमासेष्टियों का अनुष्ठान होता है। तदुपरान्त कार्तिक की पूर्णिमा को साकमेध होते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं। उनका अनुष्ठानकाल दो दिन का है। इसलिए चतुर्दशी को राजसूय-सम्बन्धी दर्श की समाप्ति कर अनीकवती आदि इष्टियों का अनुष्ठान करना चाहिये। पूर्णिमा के दिन त्र्यम्बकेष्टि पर्यन्त कर्मकलाप करके दर्शेष्टि का आरंभ करना चाहिये। तदनन्तर मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा से लेकर फाल्गुन की अमावस्या तक दर्शपूर्णमासेष्टियों का अनुष्ठान प्रतिदिन पूर्ववत् करना चाहिये।

तदनन्तर फाल्गुन की अमावास्या में ही राजसूयान्तर्गत शुनासीरीय याग करना चाहिये। फिर उसी दिन पञ्चवातीय नाम का होम और इन्द्रतुरीया नाम की इष्टि होती है। उसमें अग्निदैवत्य अष्टाकपाल पुरोडाश, वरुणदैवत्य यव का चरु, रुद्रदैवत्य गवेधुका का चरु, वहिनी (गाड़ी में जोती जानेवाली गऊ वहिनी है) का दही इन्द्रदैवत्य ये चार हविर्द्रव्य नियत हैं। तदुपरान्त उसी दिन अपामार्ग होम होता है।

तदुपरान्त फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को त्रिपंयुक्ता नामक तीन कर्मों में प्रथम त्रिपंयुक्तेष्टि होती है। उसमें वैष्णव (विष्णुदेवत्य) त्रिकपाल पहला हविर्द्रव्य है, ऐन्द्रावैष्णव (इन्द्राविष्णुदेवत्य) दूसरा हविर्द्रव्य है और विष्णुदेवत्य तीसरा हविर्द्रव्य चरु है।

तत्पश्चात् चतुर्थी को द्विहविष्केष्टि होती है। वैश्वानरदेवत्य द्वादशकपाल पुरोडाश और वरुणदेवत्य यव का चरु हविर्द्रव्य नियत हैं। फिर उसी दिन 'रत्नहवि' नामक बारह इष्टियों का आरंभ करना चाहिये। चतुर्थी से लेकर फाल्गुन पूर्णिमा तक प्रत्येक दिन में राजसम्बन्धी हरएक पुरुष के घर में एक-एक इष्टि का अनुष्ठान करना चाहिये। उनमें सेनापति के घर में पहली इष्टि होती है। उसमें अनीकवान् अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश हविर्द्रव्य नियत है। पुरोहित के घर में दूसरी इष्टि होती है, उसमें बार्हस्पत्य चरु हविर्द्रव्य होता है। यजमान के घर में तीसरी, उसमें इन्द्रदेवत्य चरु नियत है। महिषी (पटरानी) के घर में चौथी इष्टि होती है। उसमें अदिति के लिए चरु होता है। अश्वसारथि के घर में पाँचवीं इष्टि होती है। उसमें वरुणदेवत्य यव का चरु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हविर्द्रव्य है। ग्राम के मुखिया के घर में छठी इष्टि होती है, उसमें मरुद्देवत्य सप्तकपाल पुरोडाश हविर्द्रव्य है। मन्त्री अथवा दूत के घर में सातवीं इष्टि होती है। उसमें सवितृदेवत्य अष्टाकपाल पुरोडाश हविर्द्रव्य है। रथ जोतनेवाले के घर में नवीं इष्टि होती है, उसमें अश्विनीकुमारदैवत्य द्विकपाल पुरोडाश हविर्द्रव्य नियत है। परोसनेवाले के घर में दसवीं इष्टि होती है। उसमें पूषा के लिए चरु होता है। द्यूतपति (नालवाले) अथवा हलवाहे के घर से लाये गये जंगली गेहुओं से बने रुद्रदेवत्य चरुवाली इष्टि यजमान के घर में होती है, यह ग्यारहवीं इष्टि है। पतिपुत्ररहिता किसी स्त्री के घर में बारहवीं इष्टि होती है। उसमें निर्ऋतिदेवत्य नखों से छीले गये काले धानों का चरु हविर्द्रव्य है।

तदुपरान्त उसी दिन सोमारुद्रदेवत्य चरु और मित्रा-बृहस्पतिदेवत्य चरु होता है। चैत्र कृष्णपक्ष में कुछ भी कर्म नहीं होता। चैत्रशुक्ल प्रतिपदा में अभिषेचनीय दशपेयनामक सोमयागों का एक ही साथ आरंभ का संकल्प होता है। इनमें आठ सोमयाग होते हैं। उनके नाम हैं—पवित्र, अभिषेचनीय, दशपेय, केशवपनीय, व्युष्टिद्विरात्र, क्षत्रस्यधृति, त्रिष्टोम और अग्निष्टोम। उनमें आरंभ में पवित्रनामक सोमयाग किया जा चुका है। दो यहाँ पर कहे गये हैं, शेष आगे कहे जायेंगे।

इस याग में साथ ही सोमक्रयण होता है, सोम के साथ वट के फलसहित अङ्कुरों का भी क्रयण होता है। दो देवयजन होते हैं। पांच दिनों में पूरा होनेवाला यह अभिषेचनीय प्रकृति के तुल्य होता है। इसमें विशेष यह है—अग्नीषोमीय पशु के निकट देवसूहविर्द्रव्य होते हैं। वे दो पुरोडाश और छः चरु मिलाकर कुल आठ होते हैं। उनमें अङ्कुरित (जमे हुए) धानों से निष्पन्न होनेवाला सवितृ-सत्यप्रसव-देवत्य अष्टाकपाल पुरोडाश, आशुव्रीहियों (तीन पखवारों में तैयार होनेवाले धानों) से निष्पाद्य गृहपति अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरो-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्ञश, वनस्पति सोम के लिए श्यामाक का चरु, वागरूप बृहस्पति के लिए नीवार का चरु, ज्येष्ठ इन्द्र के लिए लाल धानों का चरु, पशुपति रुद्र के लिए गवेधुका का चरु, सत्य मित्र के लिए स्वयमुत्पन्न हुए धानों का चरु तथा धर्मपति वरुण के लिए यव का चरु। तदुपरान्त राजा के अभिषेक के लिए सत्रह प्रकार के जलों को मँगाना चाहिये। तदनन्तर सज्जा-सामग्री के साथ राजा का अभिषेक होता है। तदनन्तर शुनःशेप की कथा का श्रवण होता है। तदुपरान्त वाजपेय रथ से अवरोहण (उतरना) आदि होते हैं। तदनन्तर उदुम्बर (गूलर) के काठ की आसन्दी (मंचिका) में जूआ खेलने के लिए बैठाये गये यजमान को पाशा देना चाहिये। तदुपरान्त जूआ खेलना चाहिये। द्यूतक्रीड़ा करनेवालों में यजमान (राजा), राजा का भाई, सारथि, ग्राम का मुखिया और उसका भाई ये पाँच हैं। तदनन्तर संसृप के हविर्द्रव्य होते हैं और वे षष्ठी से लेकर छः दिनों में छः, द्वादशी को अवशिष्ट चार होते हैं। तदनन्तर द्वादशी में ही दशपेय का द्वितीय दिन से आरंभ कर चैत्री पूर्णिमा में सुत्या होती है। (प्रथम दिन का कृत्य दीक्षा आदि अभिषेचनीय में किया जा चुका है।)

उसमें यह विशेष है—यजमान के चमस में वट के सफलाङ्कुरों का रस डाला जाता है, किन्तु अन्यों में सोम डाला जाता है। एक एक चमस का दस दस ब्राह्मण भक्षण करें। उनमें (भक्षणकर्ताओं में) एक ऋत्विक् और शेष नौ अप्रकृत जो कोई हों। यजमान के चमस में भी ब्राह्मण ही भक्षणकर्ता है। तदुपरान्त वैशाख में कोई कर्म नहीं होता। वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को पञ्चबिल नाम का चरु निष्पादित होता है। उसमें पाँच हविर्द्रव्य होते हैं। उसके पश्चात् बारह प्रयुग्हवि नाम की इष्टियाँ होती हैं। वे एक एक महीने का अनन्तर देकर होती हैं, यह एक पक्ष है। अथवा प्रथम इष्टि का अनुष्ठान कर अपने पूर्ण बल से शम्या (हलके जुवे की कील) फेंके, वह जहाँ पर गिरे उसी स्थान में उसी दिन दूसरी (द्वितीया) इष्टि करे। इसी तरह बारहों इष्टियाँ करे, यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वितीय पक्ष है। अथवा वैशाख की पूर्णिमा को समान विधि से प्रातः-काल छः और अपराह्न में छः इष्टियाँ करे, यह तृतीय पक्ष है। दोनों पक्षों में ये सब एक दिन साध्य है। तदुपरान्त ज्येष्ठ की अमावास्या को दो पशुबन्ध होते हैं। तत्पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ल की एकादशी से लेकर पाँच दिनों में अतिरात्र संस्थावाले केशवपनीय नामक सोम का प्रकृति-वत् अनुष्ठान किया जाता है। तदुपरान्त आषाढ़कृष्ण प्रतिपदा को व्युष्टि-द्विरात्र का संकल्प होता है। वह अहीन है, इसलिए सोलह दीक्षाएँ बारह उपसद, दो सुत्याएँ होती हैं। इस तरह वह क्रतु एक महीने में समाप्य है। तदनन्तर श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को 'क्षत्रस्य धृति' का आरंभ किया जाता है। वह भी पूर्ववत् एक मास में ही समाप्य है। इसी तरह भाद्रपद में त्रिष्टोम होता है, वह भी पूर्ववत् एक मास में समाप्य है। आश्विन कृष्ण प्रतिपदा को पूर्ववत् एक मास में समापनीय अग्निष्टोम का आरंभ होता है। कार्तिक की पूर्णिमा को राजसूय के अङ्गभूत तीन पशुवाली चरक सौत्रामणी होती है। इस प्रकार राजसूय यज्ञ की समाप्ति होती है। इस (राजसूय) में यजमान की पत्नी चण्डा-तक नाम का वस्त्र पहनती है। विलासिनी महिलाओं का आधी जंघा तक लम्बा जो वस्त्र है वह चण्डातक एक प्रकार का लँहगा है (देखिये, अमरकोष २।६।११९)। राजसूय में सब मिलाकर ४४९ इष्टियाँ, दो पशुयाग, आठ सोमयाग तथा सात दर्विहोम सब मिलकर राजसूयपद-वाच्य हैं। ये सब इसमें प्रधान याग हैं। इनके अतिरिक्त तत् तत् सोम की अङ्गभूत इष्टियाँ, पशु और सौत्रामणी भी इसमें अनुष्ठेय हैं। इसका अनुष्ठान काल २१ इक्कीस महीना है। प्रयुग् हविर्द्रव्यों का एक एक मास में अनुष्ठानपक्ष में तैंतीस महीने में याग समाप्त होता है।

———

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सोमयाग के अङ्गभूत अग्निचयन का निरूपण

चयन ईंटों से बनाया गया एक तरह का स्थान है। केवल सोम-
याग की जो उत्तर तर्फ की वेदी होती है उसे बढ़ा कर वहीं पर ईंटों से
चयन बनाकर उसके ऊपर आहवनीय अग्नि की स्थापना कर उसी में
होम किया जाता है। अग्नि का आधार होने के कारण इस स्थण्डिल
का अग्निचयन नाम है। कोई कोई लोग केवल 'अग्नि' पद से उसका
व्यवहार करते हैं। यद्यपि यह सोमयाग का अङ्ग है तथापि ज्योतिष्टोम
के प्रथम प्रयोग में यह नहीं होता। किन्तु द्वितीय आदि प्रयोगों में ही
होता है। सर्वत्र विकल्प रूप से ही इसकी प्राप्ति होती है, नित्य रूप से
नहीं होती। यह सोमयाग है, अतः इसका काल वसन्त है। चयन में
पहले दिन इष्टिका-निर्माण का अङ्गभूत पशु का अनुष्ठान होता है।
इसमें मनुष्य, अश्व, भेड़ और बकरा पांच पशु होते हैं—यह प्रथम पक्ष
है, केवल प्राजापत्य (प्रजापति जिसका देवता है) पशु का अनुष्ठान
करना चाहिये—यह दूसरा पक्ष है, अथवा वायव्य पशुका अनुष्ठान,
करना चाहिये—यह तीसरा पक्ष है। उक्त सभी पक्षों में यागोपयोग से
अवशिष्ट पशु-शरीर को अचल (बंधे हुए) जल में छोड़ कर वहीं से
उखा और ईंटों के लिए मिट्टी और जल लेना चाहिये। जिस पर्व में
इष्टका-पशु किया जाता है उसके अनन्तर आनेवाली अष्टमी में उखा-
संभरण करना चाहिये। आगे संवत्सर के आदि कालों में यजमान का
अग्निधारण कहा जायगा। उसका आधारभूत पात्र 'उखा' कहलाता है।
इसके लिए पात्रनिर्माण के योग्य मिट्टी का ढेला लेकर उसमें बांबी की
मिट्टी, बकरे के रोएँ, लोहा और पत्थर का चूरा, शक्कर, पलाश की छाल
डालकर पकाये हुए जल से सान कर उसमें बालू छिड़क कर एक पशु पक्ष
में ऊँचाई और लम्बाई चौड़ाई में प्रादेशमात्र अंगूठे के सिरे से तर्जनी
के सिरे तक की नाप प्रादेश है) और पांच पशुओं के पक्ष में चौकोर
(पांच वर्ग प्रादेश की) उखा का निर्माण कर उसके बाहर ऊपरी भाग
में एक तृतीयांश छोड़कर चारों ओर एक बत्ती को तिरछी रख कर प्रत्येक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिशा में एक या दो दो बत्तियां ऊपर पहले की बत्तियों से सटा कर हर एक बत्ती के आगे स्तनाकार चिह्न बनाकर उसे अग्नि में दीप्त करे। उसके साथ अपाढा नाम की बारह अङ्गुल की एक इष्टका को, जिसपर तीन जगह अङ्गुली के आकार के चिह्न हों, तथा विश्वज्योति नाम की तीन इष्टकाओं को पकावे, यह उखा-संभरण है।

तत्पश्चात् चयन के लिए ईंटों का निर्माण करना चाहिये। वे चौदह प्रकार की होती हैं—पद्या, अर्धपद्या, पादोनपद्या, जङ्घामात्री, अध्यर्धा, अर्द्धोत्सेधा पद्या, अर्द्धोत्सेधा अर्धपद्या, पादभागा, त्रिग्राहिणी, अर्धपादभागा, बृहती, वक्रा, अर्धबृहती और चतुर्भागा। उनमें पद्या बारह अङ्गुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर होती है, बारह अङ्गुल लम्बी और छः अङ्गुल चौड़ी अर्द्धपद्या कहलाती है, बारह अङ्गुल लम्बी और चौड़ी एक कोने से विहीन पादोनपद्या है, अठारह अङ्गुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौरस जंघामात्री है, अठारह अङ्गुल लम्बी और बारह अङ्गुल चौड़ी अध्यर्द्धा है, बारह अङ्गुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी दो या तीन अङ्गुल ऊंची अर्द्धोत्सेधा पद्या है, बारह अङ्गुल लम्बी, छः अङ्गुल चौड़ी तीन या दो अङ्गुल ऊंची अर्द्धोत्सेधा अर्द्धपद्या है। छः अङ्गुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौरस पादभागा है, चौबीस अङ्गुल लम्बी और अठारह अङ्गुल चौड़ी त्रिग्राहिणी है, छः अङ्गुल लम्बी तीन अङ्गुल चौड़ी अर्द्धपादभागा है, चौबीस अङ्गुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौरस बृहती है। चौबीस अङ्गुल लम्बी और बारह अङ्गुल चौड़ी अर्द्धबृहती है। तीन अङ्गुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौरस चतुर्भागा है। ऊंचाई सब की छः अङ्गुल या चार अङ्गुल की होती है। अर्द्धोत्सेधा पद्या और अर्द्धपद्या की ऊंचाई दो या तीन अङ्गुल होती है।

'वक्रा' ईंटों की नाप बनाने की रीति यों है—पहले आधे व्याम से (व्याम लगभग दो गज को कहते हैं, दोनों हाथों के साथ दोनों भुजाओं को फैलाने से जो प्रमाण होता है उसे 'व्याम' कहते हैं) एक व्याम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिमाण का वृत्त बनाकर उसके बीच में चौबीस अंगुल लम्बा और उतना ही चौड़ा सम चतुष्कोण बनाकर उसके चार कोनों में कोने से लेकर वृत्त तक चार रेखाएँ खींचनी चाहिये। इसी तरह चतुष्कोण की पूर्वादि दिशाओं से भी वृत्त तक चार रेखाएँ खींचनी चाहिये। ऐसा करने पर आठ वक्र विभाग होंगे। वक्र विभागों को देखकर वक्र काठ का साँचा बनाकर वक्र ईंटों का प्रमाण बनाना चाहिये।

सब ईंटों पर अंगुल, काठ आदि से तीन तीन चिह्न बनाने चाहिये। वे चिह्न टेढ़े, सीधे और आड़े उन उन ईंटों में अङ्कित करने चाहिये। टेढ़े चिह्न ~~~ ऐसे होते हैं, सीधे।।। ऐसे होते हैं और आड़े — — — ऐसे होते हैं।

ईंटों की संख्या—सब ईंटें १११७० होती हैं। उसमें दस हजार आठ सौ १०८०० लोकम्पृणा होती हैं तथा तीन सौ सत्तर यजुष्मती होती हैं। शतपथब्राह्मण में दर्भस्तम्ब, दूर्वष्टका, स्वयमातृण्णा, कूर्म, उलूखल आदि पच्चीस ईंटें इनमें अधिक कहकर कुल तीन सौ पञ्चानब्बे यजुष्मती कही गई हैं। ये पच्चीस ईंटें और तीन नैर्ऋती ईंटें उक्त संख्या से अधिक हैं। उक्त ईंटों में ९२६२ पादभागा हैं। उनमें टेढ़ीरेखावाली पादभागा १७३२ और सीधी रेखावाली पादभागा ७५३० हैं। अर्द्धपादभागा छः सौ अठत्तर ६७८ है। उनमें २६२ टेढ़ी रेखावाली अर्द्धपादभागा हैं। तथा ४१६ सीधी रेखावाली अर्द्धपादभागा हैं। १२ चतुर्भागा हैं। उनमें ४ टेढ़ीरेखावाली हैं और ८ सीधी रेखावाली हैं। ७७३ पद्या हैं। उनमें ७५९ पूर्णोत्सेधा[1] पद्या हैं और शेष १८ अर्धोत्सेधा[2] पद्या हैं। १८८ अर्द्धपद्या हैं। उनमें अर्धोत्सेधा १२ हैं। उनमें भी चार आड़ीरेखा वाली और आठ सीधी रेखावाली होती हैं। २७ टेढ़ी रेखावाली होती हैं। अर्द्धोत्सेधा और २३ पूर्णोत्सेधा होती हैं। शेष सब सीधी रेखा

---

१ पूर्ण + उत्सेधा = पूर्णोत्सेधा—पूरी ऊँचाई वाली।

२ अर्द्ध + उत्सेधा = अर्द्धोत्सेधा — आधी ऊँचाई वाली।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाली होती हैं; टेढ़ी रेखा से अंकित पूर्णोत्सेधा अर्द्धपद्या दो हैं। ५ जंघामात्री होती हैं। ७० त्रिप्राहिणी, प्वक्रा, १११ अध्यर्द्धा, ६ या वृहती, ४ अर्धबृहती और २ पादोना ईंटें होती हैं।

ईंटों की यह संख्या उपधान के समय की है। निर्माण के समय की नहीं है। निर्माण के समय सब ईंटें उक्त संख्या से अधिक बनानी चाहिये, जिससे टूटने फूटने से कम न पड़ जायँ।

इस में बारह प्रकार की ईंटें पाँच चितियों में उपहित होती (चुनी जाती) हैं। चतुर्भागा वक्राओं का होतृधिष्ण्य और गार्हपत्य में क्रम से उपधान होता है। इनमें से कुछ तो मन्त्रपूर्वक उपहित होती (चुनी जाती) हैं और कुछ मन्त्र के बिना ही। जिनका मन्त्रों से उपधान होता है वे यजुष्मती कहलाती हैं। जो मन्त्र के बिना चुनी जाती हैं वे लोकम्पृणा कहलाती हैं। ईंटें बनाते समय जिस परिमाण से बनाई जाती हैं सूखने पर उसका ३२ वाँ हिस्सा घट जाता है। इसलिए जहाँ पर जो जो परिमाण बतलाया गया है वहाँ पर ३२ वाँ भाग बढ़ाकर ईंटें बनानी चाहिये। पांच चितियों में से पहिली चिति में २००६ ईंटें लगती हैं। उनमें ७७ यजुष्मती, शेष १९२९ लोकम्पृणा होती हैं। दूसरी चिति में १९९१ ईंटें लगती हैं। उनमें ४१ यजुष्मतियां, शेष १९५० लोकम्पृणा होती हैं। तीसरी चिति में २०२० ईंटें लगती हैं। उनमें ७० यजुष्मतियां, शेष १९५० लोकम्पृणा होती हैं। पाँचवीं चिति में ३०५३ ईंटें होती हैं, उनमें १३४ यजुष्मतियाँ, शेष २९२२ लोकम्पृणा होती हैं। सब मिला कर ३६० यजुष्मती और १०७०९ लोकम्पृणा होती हैं। दोनों का जोड़ १११७० है।

तदनन्तर यजमान सोने का गोल रुक्म (एक प्रकार का आभूषण) गले में धारण करे। उसके बाद छींके पर रखी उखासंबन्धी अग्नि को गले में धारण कर, उतार कर आसन्दी पर (मंचिका पर) रखें। इस तरह वर्ष भर उखा धारण, विष्णुक्रम, वनीवाहन (एक प्रकार का कर्म) और वात्सप्र का उपस्थान करना चाहिये। इसमें छः मास की दीक्षा होती है, यह पक्ष और एक दीक्षा होती है, यह पक्ष भी हैं। एक दीक्षा पक्ष में उसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रात्रि को विष्णुक्रम आदि, वेदी की नाप और अग्निक्षेत्र की नाप करनी चाहिये। और वेदी चयनयाग की चिति के अनुसार बढ़ानी चाहिये। वह क्षेत्रफल में चालीस कदम की होती है (देखिये का० श्रौ० १७।३।१४)। उसमें अग्निक्षेत्र बनाना चाहिये। वह साढ़े सात पुरसा का होता है। उसके मध्यभाग में दो पुरसा लम्बा और दो पुरसा चौड़ा स्थण्डिल बनाकर उसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर उससे सटे हुए तीन स्थण्डिल बनाने चाहिये। तीनों की चौड़ाई एक पुरसा होनी चाहिये। दक्षिण और उत्तर के स्थण्डिलों की लम्बाई ऊपर को हाथ फैलाये हुए पुरुष के बराबर होनी चाहिये। पश्चिम की लम्बाई एक बित्ता अधिक पुरुषपरिमाण के बराबर होनी चाहिये। यह स्थण्डिल पूर्वाभिमुख बनाना चाहिये। उसके दक्षिण और उत्तर की ओर जो स्थण्डिल होते हैं उनको पक्ष कहा जाता है। पश्चिम के स्थण्डिल को पुच्छ कहते हैं। बीच के स्थण्डिल को आत्मा कहा जाता है। इस प्रकार स्थान बना कर उसे रस्सी से घिरवा कर उसके चारों ओर गड्ढे बनाकर वहाँ २६१ या ३९४ पत्थर या ईटों को आपस में सटा कर गाड़ दे। तदुपरान्त स्थण्डिल के वायव्य कोने में जाँघ तक, नाभि तक और मुँह तक ऊँचे तीन पत्थरों को क्रम से गाड़ना चाहिये। इसी चयन की ९५ बार तक आवृत्ति से अनुष्ठान भी सूत्रकार ने कहा है। उसमें पहली आवृत्ति में क्षेत्र का परिमाण कहा है। द्वितीय आदि आवृत्तियों में प्रतिचयन एक एक पुरसा परिमाण बढ़ा कर चयनपर्यन्त अग्निक्षेत्र को नापे। उसके अनुसार ईंटें भी परिमाण से बढ़ानी चाहिये न कि संख्या से। सर्वत्र पहिली चिति में जितनी ईंटें कही गई हैं उतनी ही ईंटों से ९५ वीं चिति भी बनानी चाहिये, केवल ईटों का परिमाण बढ़ता है, यह ज्ञातव्य है। यहाँ आवृत्ति में क्रम का नियम नहीं है। अपनी इच्छा से जिस किसी चिति का निर्माण किया जा सकता है।

तदनन्तर पहले गार्हपत्य अग्नि का स्थण्डिल बनाना चाहिये। वह एक चितिवाला या तीन चितिवाला होता है। उसकी चौड़ाई चार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अरत्नि (मुट्ठीबँधा हाथ) होती है। हर एक चिति में २१ ईंटें होती हैं उनमें चार अर्द्धबृहती, सात पद्या, दो अर्द्धपद्या और आठ वक्रा होती हैं। इनका परिमाण पहले ही कहा गया है। उपधान की रीति (चुनने की प्रणाली) पद्धति से ज्ञातव्य है। कात्यायनश्रौतसूत्र के अन्त में दिये गये चिति के नकशे से भी जानी जा सकती है।

इस स्थण्डिल के चारों ओर परिश्रित् भी तीन अङ्गुल चौड़े पत्थर गाड़ने चाहिये। चिति के सहारे (टेकने) के लिए। इस प्रकार बनाये गये गार्हपत्य स्थण्डिल को चात्वाल से लाई गई मिट्टी से लीप कर उस पर उखा की अग्नि की स्थापना करनी चाहिये।

तदनन्तर नैर्ऋत्य दिशा में दूर जा कर भूसी की अग्नि में पकाई हुई निर्ऋति नाम की तीन काली ईटों को गड्ढे आदि में फेंक कर उस पर छींका कण्ठा, जाल और चौकी को भी फेंक कर चला आवे।

उसके बाद शाला में आकर प्रायणीयेणेष्टि को हविष्कृत्-आहुति पर्यन्त कर छः बैलों का, बारह बैलों का या चौबीस बैलों के हल में साजबाज से युक्त कर उससे अग्निक्षेत्र की भूमि को जोते। (इसमें हल चलाने में दोष नहीं है)। तदनन्तर प्रायणीय की पूर्णतया समाप्ति कर आतिथ्येष्टि का अनुष्ठान करे। तदनन्तर प्रवर्ग्य और उपसद् को प्रकृति के तुल्य अनुष्ठान करे।

तदनन्तर अग्नि-क्षेत्र में घोड़े को चढ़ा कर हटा दे। फिर अग्निक्षेत्र के मध्य में कुशस्तम्ब रखकर उस पर कमलपत्र रख कर उसके ऊपर उखा रखते समय यजमान द्वारा धारण किये हुए रुक्म को रख उसपर सुवर्ण का पुरुषाकार प्रतिमा को पूर्वसिर रख कर उसके ऊपर स्वयमातृणा को रखे।

स्वयमातृण्णा उस ईंट को कहते हैं जो पकते समय अपने आप छिद्रयुक्त हो जाती है। उसके पूर्व की ओर दूर्वामयी ईंट को रखे। इ

---

१ योनिर्वै यज्ञस्य चात्वालम् (तै० सं० ६।१।३।८)। अग्निहोत्र का उपकरण (एक प्रकार का गर्त)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कार जिस क्रम से यजुष्मती ईंटों का उपधान (चुनना) सूत्र में विहित है उसी क्रम से उन्हें चुन कर अवशिष्ट जगह में लोकम्पृणा ईंटों को जोड़े। यजुष्मती ईटों का क्रम, उनके नाम और संख्या कात्यायन श्रौतसूत्र में चयन के नक्शे में दिखलाई गई है। वहीं से उनका परिज्ञान कर लेना चाहिये।

इस तरह आत्मा नामक चिति के मध्य भाग को चुनवा कर फिर दक्षिण पक्ष को, फिर उत्तर पक्ष को, फिर पूंछ को चुनवावे। इस प्रकार उस दिन पहली और दूसरी चिति को बना कर तदुपरान्त अपराह्न में बनाये जाने वाले प्रवर्ग्य और उपसद् बनावे। उसके दूसरे दिन प्रातः काल प्रवर्ग्य और उपसद् के बाद तीन चितियां चुननी चाहियें। तीसरे दिन पुरीष-निवाप (चात्वाल देश से लाई हुई मिट्टी का चिति के ऊपर प्रक्षेप) आदि होता है। यह एकाह पक्ष में होता है, किन्तु छः उपसद्वाले क्रतु में प्रतिदिन एक एक चिति बनाई जाती है। छठे दिन उक्त पुरीष-निवाप होता है। इस तरह निर्मित स्थण्डिल का हजार सोने के टुकड़ों से प्रोक्षण करे।

तदुपरान्त शतरूद्रिय होम होता है। उसमें पहले जो पत्थर स्थण्डिल के वायव्य कोण में परिश्रित संज्ञक गाड़े थे उन्हें आहवनीय की जगह रख कर उसी तरह अग्न्यन्वाधान आदि का अनुष्ठान कर जुहू की जगह आंक के पत्ते से 'नमस्ते रुद्र मन्यवः' (१६-१-२६) मन्त्रों द्वारा बकरी के दूध से अथवा जंगली तिल और जगली गेहुओं के सत्तू से उत्तराभिमुख हो खड़े खड़े होम करे। यह होम अविच्छिन्न धारा से (अटूट धारा से) करना चाहिये। इसमें धारा का विच्छेद नहीं करना चाहिये। आदि से लेकर तीसरे अनुवाक तक जानु परिमाण परिश्रित् में होम करे तथा उसके अन्त में एक स्वाहाकार करे। तदनन्तर चतुर्थ और पञ्चम अनुवाकों (१६-२७-२६) द्वारा नाभि परिमाण परिश्रित् में होम करे, तथा उसके अन्त में एक स्वाहाकार करे। तदुपरान्त मुख तक ऊंची परिश्रित् में 'नमोऽस्तु' (१६-३७-६३) इससे

 CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पहले की तरह होम करे, अन्त में स्वाहाकार करे। तदुपरान्त 'नमोऽस्तु' (१६-६४-६६) इन मन्त्रों से मुख, नाभि और जंघा तक ऊंची परिश्रितों में पहले किये गये विधान के विपर्यास से होम करे। उसके बाद सायंकाल प्रवर्ग्य और उपसद् करे। तदनन्तर तीसरे दिन प्रातः सायं काल प्रवर्ग्य और उपसद् करे। तीसरे दिन प्रातः सायं काल प्रवर्ग्य और उपसद् कर प्रवर्ग्य की समाप्ति कर आहवनीय से अग्नि ले जाकर स्थण्डिल प्रदेश में जाकर स्थण्डिल में स्थापित स्वयमातृण्णा के समीप प्रतिप्रस्थाता द्वारा धारण की गई अग्नि में सफेद बछड़ेवाली गौ के दूध से, स्वयमातृण्णा के ऊपर हवन कर तदनन्तर गुग्गुल आदि का होम कर उस पर अग्नि की स्थापना करे। तदनन्तर द्वादश कपाल वैश्वानर और सप्त कपाल मारुत हवि का होम करे। तदुपरान्त गूलर के काष्ठ से निर्मित स्रुक् में घृत लेकर 'वाजश्च मे' इत्यादि आठ अनुवाकों द्वारा अटूट घृतधारा से होम करे। पूर्व की भाँति यहां भी धारा का विच्छेद नहीं करना चाहिये। तदुपरान्त राजसूय के छः पार्थहोम, वाजपेय के वाजप्रसवीय होम, अग्नि के वाजप्रसवीय होम करे। उसके बाद यजमान का अभिषेक होता है। फिर पार्थहोम, राष्ट्रभृद् होम, वातहोम और नवाहुतियां होती हैं। तत्पश्चात् होत्रीय आदि सात धिष्ण्यों का चयन करना चाहिये। उसमें आग्नीध्रीय, होत्रीय, नेष्ट्रीय और अच्छावाकीय धिष्ण्यों में आठ आठ ईंटे होती हैं। होत्रीय में इक्कीस, ब्राह्मणाच्छसीय में ग्यारह, मार्जालीय में छः इस प्रकार ईंटों की संख्या निर्धारित है। इन सब धिष्ण्यों में गार्हपत्यादि स्थण्डिल की भाँति परिश्रित नहीं गाड़े जाते, किन्तु चारों ओर रखे जाते हैं। परिश्रितों की संख्या तत् तत् ईंटों की संख्या के अनुसार ही होती है। तदनन्तर अग्नीषोमीय पशु का अनुष्ठान होता है। उसमें राजसूय के अन्तर्गत अभिषेचनीय नामक सोमयाग के धर्म हैं। पशुपुरोडाश के अनन्तर आठ देवसूहविर्द्रव्यों का होम होता है। तदनन्तर सुत्या होती है। वह प्रकृतिवत् होती है। अवभृथ के अन्त में उदनीयेष्टि होती है। मैत्रावरुणदेवत्या वशा (वन्ध्या गौ) का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुबन्धन करना चाहिये। उसमें यह विशेष है—पशुपुरोडाश होम के बाद पांच देविकाहविर्द्रव्यों का होम और प्रचार होता है। यह चयनाङ्ग है।

अश्वमेध यज्ञ

तदुपरान्त अश्वमेध नामक सोमयाग होता है। यद्यपि यह सोमयाग ही है तथापि अश्व इसका सवनीय पशु है, इसलिए इसकी 'अश्वमेध' संज्ञा है। इसमें अभिषिक्त सार्वभौम राजा अधिकारी है। फाल्गुन शुक्ल पक्ष की अष्टमी अथवा ग्रीष्म में अष्टमी या नवमी को इसका आरंभ होता है।

आरम्भ दिन में वरण के अनन्तर पहले ब्रह्मौदन का पाक होता है और पाक का चार महान् ऋत्विजों के लिए दान होता है। वे उसका भक्षण करें। उनमें से प्रत्येक के लिए १ हजार गउएँ और चार सौ मान (सौ रत्ती की सुवर्ण मुद्रा) दे।

तदनन्तर यजमान की चार पत्नियाँ मणि-मोतियों के आभूषणों से अलङ्कृतकंठ होकर हरएक सौ सौ अनुचरियों से अनुगत हो राजा के सामने आवें। उनमें पहली पटरानी, दूसरी विवाहित स्त्री प्रेयसी, तीसरी अप्रेयसी और चौथी दूत की पुत्री विवाहित होती है। पटरानी की अनुचरियाँ राजपुत्रियाँ, दूसरी की क्षत्रियजातिमात्र की पुत्रियाँ, तीसरी की घोड़े पालने वाले और ग्रामणी की पुत्रियाँ और चौथी की सारथिपुत्रियाँ अनुचरियां हों।

आई हुई उक्त पत्नियों के साथ यजमान सायंकालीन अग्निहोत्र-हवन होने पर रात्रि में उत्तर सिर सोई हुई प्रेयसी पत्नी के उरुओं के मध्य में उत्तर सिर करके सोता है। अन्य पत्नियाँ अगल बगल सोती हैं। ब्रह्मचर्य की नियमतः रक्षा करे। सूर्योदय होने पर अग्निहोत्र होम कर पूर्णाहुति करे। तदुपरान्त पथिकृत् इष्टि होती है। उसमें पथिकृत् अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश होता है। तदनन्तर कुश की बनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बारह बंध मुट्ठे हाथ की या तेरह बंध मुट्ठे हाथ की अश्व की रस्सी को घी मे भिगोकर अश्व को बाँधने के लिए ब्रह्मा से पूछे। ब्रह्मा से अनुज्ञात होकर अश्व को बाँधे।

अश्व का लक्षण—अश्व शरीर के पूर्वभाग में काला, अधोभाग में सफेद, ललाट में शकट की आकृति के तीन पुण्ड्रकों से युक्त, अनन्य सदृश[1], हजार गउओं के मूल्य से लभ्य और नीले रंग के चिह्नों से युक्त हो। उस अश्व को तालाब आदि के स्थिर जल के मध्य में लिवा ले जाकर उस जलसे उसके ऊपर प्रोक्षण करे। उसके पश्चात् शूद्र से वैश्या में उत्पन्न हुए पुरुष द्वारा चतुरक्ष[2] (चार आँख वाले) कुत्ते को सिध्रक (एक प्रकार का वृक्ष) के मूसल से मरवा कर बेंत की चटाई से घोड़े के नीचे जल में डुबावे, वहाँ से लौट कर होम करना चाहिये।

तत्पश्चात् पृथक् पृथक् तन्त्र से तीन द्वादशकपाल पुरोडाश होते हैं। ये ही तीन सावित्री इष्टियाँ कही जाती हैं। उक्त इष्टियों के प्रयाजों का अनुष्ठान होने पर कोई ऋत्विक् या कोई दूसरा ब्राह्मण यजमान के दान, याग आदि का स्वयं बनाई हुई तीन गाथाओं द्वारा वीणा में गान करे।

तदनन्तर अध्वर्यु और यजमान सौ अश्वों, जिनकी जवानी ढल गई हो, के साथ यज्ञ के अश्व को ईशान दिशा में छोड़ें। घूमने के लिए चले हुए अश्व के पीछे युद्ध के लिए धनुर्बाणधारी रक्षकों को भेजे। उक्त रक्षकों में १ सौ राजपुत्र, १ सौ केवल क्षत्रियजाति, १ सौ सूतपुत्र और १ सौ दासीपुत्र हों। उन्हें इस प्रकार उपदेश देकर भेजे—अश्व को घडवा (घोड़ी) तथा स्नान योग्य जल से वारण करना, जो ब्राह्मण अश्वमेध क्रिया नहीं जानता उससे वृत्ति (भोजन) ग्रहण करना। बढई के घर में निवास करना। वे इस प्रकार के उपदेशों को पाकर पूरे एक

---

१ जिसके तुल्य दूसरा न हो।

२ आँखों के ऊपर आँखों के तुल्य चिह्नवाला कुत्ता चतुरक्ष कहलाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्ष तक सावधानी के साथ अश्व को घुमाकर आवे, उससे पहले नहीं। तदनन्तर पारिप्लव का आख्यान है। तदुपरान्त अश्व के पादविक्षेप और वीर्य के उद्देश्य से प्रक्रमहोम और धृतिहोम करना चाहिये। धृतिहोम के समय क्षत्रिय यजमान के विजय आदि का स्वयं बनाई हुई तीन गाथाओं द्वारा वीणा में गान करे। पहले दिन का कृत्य यहीं तक है।

इस प्रकार पूरे वर्ष तक वावाता (प्रिया) के साथ शयन, तीन सावित्र इष्टियां, गान, पारिप्लव का आख्यान, प्रक्रमहोम और धृतिहोम होते हैं। इसमें अर्धमास, मास, तीन मास, छः मास के पक्षों का भी विकल्प है।

तत्पश्चात् चैत्र की पूर्णिमा को उखासंभरण और इष्टिका-पशु का अनुष्ठान होता है। उसी दिन दीक्षणीयेष्टि का आरंभ कर छः दिनों में प्रतिदिन एक एक इष्टि से यजन कर वैशाख कृष्ण षष्ठी को सातवीं दीक्षणीयेष्टि की समाप्ति करे। उसके बाद उसी दिन दीक्षा का आरंभ कर बारह दिनों में वैशाख शुक्ल तृतीया तक बारह सुत्याओं की समाप्ति करनी चाहिये। तदुपरान्त तृतीया को ही सोम का क्रयण होता है। यहां से लेकर चतुर्दशी तक बारह उपसद होते हैं। चतुर्दशी को अग्नीषोमीय पशुओं का अनुष्ठान होता है। इसमें विभिन्न प्रकार के इक्कीस मुट्ठीबन्ध हाथ के इक्कीस यूप होते हैं। उनमें एक राज्जुदाल (लसौड़ा का) दो पैतुदारव (देवदारु के), छः बिल्व के, छः खैर के और छः पलाश के यूप होते हैं।

आहवनीय अग्नि के आगे राज्जुदाल (लसौड़े का) यूप गाड़ा जाता है। उसकी अगल बगल में देवदारु के दो यूप गाड़े जाते हैं। इसी प्रकार शेष बिल्व, खैर और पलाश के यूप क्रमशः एक के बाद एक बदल कर गाड़े जाते हैं। अग्नीषोमीय पशु भी इक्कीस होते हैं।

पशुओं का यूपों में नियोजन (बन्धन) दक्षिण से आरंभ कर उत्तर में समाप्त करना चहिये। पशु अनेक होने पर भी पशुपरोडाश एक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही होता है। चयन से सम्बन्ध होने के कारण तदनुसार प्रक्रम बढ़ा कर वेदी भी बढ़ानी चाहिये और ईंटें भी। उसके बाद इसी दिन पहली सुत्या होती है। उसकी अग्निष्टोम साम से समाप्ति होती है। उसमें सवनीय पशु दो एकादशिनी यानी बाईस होते हैं।

उनको यूपों में बांधने का क्रम यों है—बीच के राज्जुदाल यूपमें दो आग्नेय पशुओंको बांध कर शेषों को क्रम से एक दक्षिण ओर और दूसरा उत्तर ओर यों बदल कर पारी पारी से बांधना चाहिये। दक्षिण और उत्तर में दो इत्यादि रूप से।

उसमें दक्षिणा में विशेष है। पहले विजय के समय पूर्व दिशा से जो धन पाया हो उसे बराबर बराबर तीन भागों में बांट कर उनमें से एक भाग द्वोता को दे। दक्षिण दिशा से जो धन मिला हो, उसका तीसरा हिस्सा ब्रह्मा को दे। पश्चिम दिशा से प्राप्त धन का तीसरा हिस्सा अध्वर्यु को तथा उत्तर दिशा से प्राप्त धन का तृतीयांश उद्गाता को दे। शेष दो भाग अनन्तर आनेवाले सुत्या दिनों में ऐसे ही दे। शेष सब कृत्य प्रकृतिवत् करना चाहिये।

तदनन्तर सूर्यास्त होने पर रात्रि में धृत, सत्तू, भुने हुए जौ और लावों में से, एक एक चीज लेकर क्रम से प्रत्येक पहर में बारह अनुवाकों में पढ़े हुए प्राणाय स्वाहा इत्यादि बारह मन्त्रों से रात भर हवन करे (देखिये य० सं० २२। २३—३४)।

तदनन्तर दूसरा दिन उक्थ्यसामसंस्थाक होता है यानी उसमें 'उक्थ्य' साम से समाप्ति होती है। उसमें सुवर्ण और रजत पात्रों में दो 'महिम' ग्रहों का ग्रहण होता है। बहिष्पवमान के लिए प्रसर्पण (गमन) अश्व का अन्वारम्भ (सम्पर्क) कर करना चाहिये। उपाकरण के समय पशु-एकादशिनी (ग्यारह पशुओं) के उपाकरण के अनन्तर अश्व का उपाकरण करना चाहिये। तत्पश्चात् इक्कीस यूपों में दो एकादशिनी (बाइस) पशुओं का पूर्ववत् नियोजन कर अश्व, तूपर और गोमृग का अग्नि में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थित (आग्नेय) राज्जुदाल यूप में नियोजन करना चाहिये। बिना सींग का बकरा तूबर कहलाता है, गोमृग चँवर गाय है। तदुपरान्त अश्व के ललाट आदि तत्-तत् अङ्गों में बारह पशुओं का नियोजन करना चाहिये। उनकी संज्ञा 'पर्यङ्या' है।

पशुओं का नियोजन करने के लिए अश्व के सारे शरीर को रस्सियों से लपेट कर तत् तत् अङ्ग में स्थित रस्सी में पशुओं को कौशल से बाँधना चाहिये। बन्धन का क्रम यों है—ललाट पर अग्नि-देवत्य काली गर्दन वाले बकरे को, ठुड्डी के नीचे सरस्वतीदेवत्य भेड़ी को, अगली दो टाँगों में अश्विनीकुमारदेवत्य दो बकरों को, नाभि में सोमपूषदेवत्य काले बकरे को, दो पसलियों में सूर्यदेवताक सफेद बकरे और यमदेवत्य काले बकरे को, पिछली टाँगों में त्वष्टृदेवत्य लम्बे बालवाले दो बकरों को तथा पूँछ में क्रम से वायु, इन्द्र और विष्णु देवत्य सफेद वर्ण के पशु, गर्भघातिनी गऊ और वामन (बौने) पशु को बाँधना चाहिये। अश्व, तूपर और गवय को मिलाकर पन्द्रह हो गये। पूर्वोक्त अग्निदेवत्य दो बकरों के साथ इन सत्रहों को बीच के यूप में बाँधे। अन्य बीस यूपों में रोहित आदि १५। १५ पशुओं का नियोजन करना चाहिये। पहले एकादशिनी का एक एक पशु बाँधा गया था सब मिलाकर एक एक यूप में सोलह सोलह पशु हो गये। सबका जोड़ ३३७ हुआ। ये सब ग्राम्य (पालतू) पशु हैं (देखिये यजु० सं २४। १—२०)।

तदनन्तर यूपों के मध्य भाग में जंगली पशुओं का नियोजन करना चाहिये। वे सब पिंजड़ा, घोंसला, जल आदि में जहाँ जहाँ रखे जा सकें कौशल से वहीं रख उनकी स्थापना करनी चाहिये, संभव न होने से इनका यूपों में नियोजन नहीं होता।

यूप में बाँधे हुए पशुओं को शास्त्रोक्त विधि से प्राणों से वियुक्त कर उनके 'वपा' आदि अङ्गों का हवन किया जाता है। कपिञ्जल आदि जंगली जीवों का नियोजन के क्रम से तत् तत् देवताओं के लिए उत्सर्ग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri.

कर वैसे ही पिंजड़े आदि से उनका त्याग करना चाहिये। तदुपरान्त विधिपूर्वक अश्व को प्राणों से वियुक्त कर मरे हुए सवनीय अश्व की तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये। फिर पटरानी मृत अश्व के समीप सोती है। वहीं पर अध्वर्यु और कुमारी में वाद प्रतिवाद चलता है। तदनन्तर ब्रह्मा और पटरानी का संवाद होता है। तदनन्तर होता और परिवृक्ता (उपेक्षिता रानी) का, तदनन्तर प्रतिहार (प्रतिहर्ता) पालागली (दूतपुत्री विवाहिता चतुर्थ पत्नी) का क्रम से संवाद होता है। तदुपरान्त पटरानी को पत्नियों के उठाने पर पटरानी आदि पत्नियाँ अश्व के शरीर में एक सौ एक सीसा, ताँबा, सुवर्ण आदि से निर्मित सुइयाँ घुसेड़ती हैं।

अश्व में वपा नहीं होती, अतः वपा के बदले उसका मेदा निकाल कर काष्मर्य के शूलों से उसे पका कर होम होता है।

तदनन्तर ब्रह्मोद्यवदन होता है। उसमें अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता, प्रतिप्रस्थाता और यजमान प्रश्नोत्तर करते हैं। तदनन्तर पशु एकादशिनी के वपा का हवन होता है। तदुपरान्त वनस्पतियाग के अनन्तर अश्वशूल का पशुशेष सब लेकर होमा जाता है। फिर आज्य से शाद आदि देवताओं के लिए तथा दन्व आदि पशु के अङ्गों के लिए होम होता है। तदनन्तर पत्नीसंयाजान्त कर्म कर के उस दिन की वहीं पर समाप्ति कर दे।

द्वितीया के दिन प्रातःकाल अतिरात्रसंस्थाक तृतीय दिन का कृत्य होता है। उस दिन सब कृत्य षोडशीग्रहण आदि भी करना चाहिये, क्योंकि उक्त दिन अतिरात्रसंस्थाक है।

तदनन्तर अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) होता है। इक्कीस बांझ पशु होते हैं। उनमें सात वरुणदेवत्य, सात विश्वेदेवदैवत्य और सात बृहस्पतिदेवत्य होते हैं। प्रत्येक यूप में एक एक पशुका नियोजन होता है। तीन ही पशुपुरोडाश होते हैं। उदवसानीय (अन्त में होने वाली इष्टि कर्म) के अनन्तर पालागली की अनुचरियों का अध्वर्यु के लिए दान होता है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दरानी की अनुचरियों का ब्रह्मा के लिए, वातात्रा (प्रेयसी) की अनुचरियों का उद्गाता के लिए तथा परिवृक्ता की अनुचरियों का होता के लिए दान होता है। तब से लेकर बारह दिनों तक प्रतिदिन एक एक अग्निदेवत्य पुरोडाश अथवा ब्रह्मौदन होता है। तदनन्तर एक वर्ष पूर्ण होने तक प्रत्येक ऋतु में छः छः पशुओं का तन्त्र से आलम्भन करना चाहिये। उनमें से वसन्त ऋतुमें छः अग्निदेवत्य, ग्रीष्म ऋतु में छः इन्द्रदेवत्य, वर्षा ऋतु में छः पर्जन्यदेवत्य, शरद ऋतु में छः मैत्रावरुणदेवत्य, हेमन्त में छः इन्द्रावैष्णवदेवत्य, तथा शिशिर ऋतु में छः ऐन्द्रबार्हस्पत्यदेवत्य पशुओं का आलम्भन किया जाता है। शेष सब निरूढपशुवत् करना चाहिये।

पुरुषमेधयाग

उसके बाद पुरुषमेधयाग होता है। उक्त याग के अधिकारी ब्राह्मण और क्षत्रिय दो ही वर्ण हैं। इसमें तेईस दीक्षाएँ, बारह उपसद और पाँच सुत्याएँ होती हैं। चालीस दिनों में यह याग पूरा होता है। चैत्र शुक्ल दशमी से इसका आरम्भ होता है। इस याग में ग्यारह यूप होते हैं। अग्नीषोमदेवत्य ग्यारह पशु होते हैं। सबका एक ही पुरोडाश होता है।

पाँच सुत्याओं में पहला और पाँचवा दिन अग्निष्टोमसंस्थावाला, चौथा दिन उक्थ्यसंस्थावाला और तीसरा दिन अतिरात्रसंस्थावाला होता है। सुत्याओं में प्रतिदिन एकादश पशु होते हैं। ब्राह्मणकर्तृक (ब्राह्मण द्वारा किये जाने वाले) सर्वमेध में सर्वस्व दक्षिणा है। क्षत्रियकर्तृक (क्षत्रिय द्वारा किये जाने वाले) सर्वमेध में तो अश्वमेध के समान दक्षिणा होती है। अतिरात्र संस्थावाले तीसरे दिन प्रत्येक यूप में एक एक ऐकादशिन का नियोजन कर बीच के यूप में ब्राह्मण आदि अड़तालीस, जिनका संहिता में उल्लेख किया है, पुरुषों को बाँधना चाहिये। अन्य दस यूपों में ग्यारह ग्यारह पुरुषों का नियोजन करे (देखिये शु० य० सं० ३०। ५-२२)। इस याग में दूसरे यूप में ३७

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुरुषों का नियोजन होता है। सब मिलकर १८४ पुरुषों का बन्धन हुआ। इस प्रकार बन्धन के बाद पुरुषसूक्त से सबका उपस्थान करे। तदुपरान्त सब पुरुषों को खोल दें।

तत्पश्चात् जिस जिस देवता के लिए जिस जिस पुरुष का नियोजन किया गया था उस उस देवता के लिए एक एक आज्याहुति का होम करे।

तदुपरान्त आत्मा में अग्नियों का समारोप कर उत्तरनारायण (शु० य० सं० ३१। १७—२२) से सूर्य का उपस्थान कर पीछे की ओर न देखते हुए अरण्य में जाकर वानप्रस्थ हो जाय। फिर ग्राम में जीवनभर न आवे। जब फिर कभी ग्रामवास की इच्छा हो तब दो अरणियों में अग्नि का समारोपण कर घर में ही रहे और जीवनभर अग्निहोत्र आदि भी करे।

सर्वमेधयाग

अब सर्वमेध का परिचय दिया जाता है। इसमें बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और बारह सुत्याएँ होती हैं। यह याग चौंतीस दिनों में पूर्ण होता है। इसमें पहला दिन अग्निष्टोमसंस्थावाला होता है। उसके पश्चात् तीन दिन इन्द्रस्तुत्, सूर्यस्तुत् और वैश्वदेवस्तुत्, जिनकी समाप्ति उक्थ्यसाम से होती है, क्रम से होते हैं। तदुपरान्त ५ वें दिन महाव्रतसंज्ञक कर्म होता है। तदुपरान्त वाजपेय ६, फिर अप्तोर्याम ७, फिर त्रिणवस्तोम उक्थ्य, तदुपरान्त त्रयस्त्रिंशस्तोम उक्थ्य ९, उसके बाद विश्वेजित्, सर्वपृष्ठ ८, अतिरात्र १०। चैत्रशुक्ल षष्ठी को इष्टकापशु और उखा-संभरण होता है। एक सौ प्रकार की अग्नि इसमें होती है। सत्रह मुट्ठी बंध हाथ का एक यूप होता है। इसमें दसों दिनों में स्तोमायन सवनीय पशु होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पितृमेधयाग

अब पितृमेध का स्वरूप कहा जाता है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और
ैश्य तीनों वर्णों का अधिकार है। एक ही अध्वर्यु ऋत्विक् होता है।
वमें मृत पिता आदि की अस्थियों को अरण्य में ले जाकर उन अस्थियों
जिस अङ्ग की जो अस्थि हो उससे तत् तत् अङ्गों की कल्पना कर पुरु-
ाकृति बनाकर सेवार, कुश आदि से उन्हें ढक कर ग्राम में वापस
ाकर, स्नान कर घर में आवे। इसमें केवल इतनी ही विधि होती है।

एकाह याग

इसके अनन्तर एकाहों के स्वरूप का उल्लेख किया जाता है। जिस
ोमयाग में सुत्या (सोम का गारना) एक दिन में पूरी होती है, एक
अनेक दीक्षाएँ होती हैं, तीन या बारह उपसद होते हैं वह सोमयाग
काह कहा जाता है। वे एकाह कात्यायनश्रौतसूत्र के बाईसवें अध्याय
सूत्रकार ने भू से लेकर वज्र तक ७७ गिनाये हैं।

यद्यपि हमारे शतपथ ब्राह्मण में ये पठित नहीं है तथापि छन्दोग-
ाह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण आदि में इनका पाठ है, वहीं से लेकर सूत्रकार
कात्यायनश्रौतसूत्र में इनका समावेश किया है। इसमें यजमान एक
होता है। सोलह ऋत्विक होते हैं। अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी
ौर अतिरात्र सामों में से किसी एक से इनकी समाप्ति होती है। यदि
काह क्रतु अग्निष्टोमसंस्थाक होता है तो सवनीय पशु अग्निदैवत्य एक
ोता है। यदि क्रतु उक्थ्यसंस्थावाला हो तो अग्निदैवत्य और ऐन्द्राग्नि-
वत्य दो सवनीय पशु होते हैं। यदि क्रतु षोडशिसंस्थावान् होता है
ो अग्निदैवत्य, ऐन्द्राग्निदैवत्य और इन्द्रदैवत्य ये तीन सवनीय पशु
ोते हैं तथा यदि क्रतु अतिरात्रसंस्थाक हो तो पूर्वोक्त तीन पशुओं
के साथ सरस्वतीदेवत्य भेड़ी चौथा सवनीय पशु होता है। उनमें
हला भू नाम का एकाह अग्निष्टोमसंस्थावाला है। ज्योति नाम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का दूसरा एकाह अग्निष्टोमसंस्थावाला है। गौ नाम का तीसरा एकाह उक्थ्यसंस्थावाला है। चौथा आयु नाम का एकाह उक्थ्यसंस्थाक है। पांचवा अभिजित्, छठा विश्वजित् ये दो अग्निष्टोमसंस्थावाले हैं। इन दोनों का अलग अलग अनुष्ठान होता है अथवा साथ ही होता है, ये दो पक्ष हैं। इस विश्वजित् में सर्वस्व-दक्षिणा का सहस्रदक्षिणा के साथ विकल्प किया गया है। सर्वस्व-दक्षिणा हो अथवा सहस्रदक्षिणा हो। तदुपरान्त अग्निष्टोमसंस्थाक सातवां सर्वजित् एकाह है, इसमें संवत्सरपर्यन्त दीक्षा होती है, सात सुत्याएँ होती हैं और तीन उपसद होते हैं। तदुपरान्त ज्योति नामका आठवां, विश्वज्योति नामका नवां सर्वज्योति नाम का दसवाँ और त्रिरात्रसम्मित नाम का ग्यारहवाँ ये चार एकाह होते हैं। उनमें तीसरा उक्थ्यसंस्थावाला है। अन्य तीन अग्निष्टोमसंस्थाक हैं।

तदुपरान्त बारहवें से लेकर सत्रहवें तक अग्निष्टोमसंस्थावाले छः एकाह होते हैं। वे साद्यस्क्र[1] कहलाते हैं। इनमें पहले और दूसरे का कोई विशेष नाम नहीं है, शेष चारों के क्रम से अनुक्री, विश्वजिच्छिल्प, श्येन, एकत्रिक नाम हैं। इस में सवनीय पशु के आलम्भन के समय में ही अग्नीषोमीय, सवनीय तीन अनूबन्ध्याओं का आलम्भन होता है। सोम की निष्क्रयभूत (मूल्यभूत) गौ के स्थान में तीन वर्ष का साँड (वृषभ), साद्यस्क्र एकाह में सस्यों से हरी-भरी भूमि वेदी होती है, खलेवाली[1] पशु बांधने के लिए यूपस्थानीय है।

१—सद्यः यानी दीक्षा के दिन ही सोमक्रय से लेकर सोम गारने तक कर्म जिनमें होता है वे 'साद्यस्क्र' कहलाते हैं।

१—खल में तृणों से अन्न के दाने निकालने के लिए बीच में एक खूंटा गाड़ कर उसमें एक रस्सी बांधकर उसमें बैल आदि को बांधकर घुमाते हैं। उनके घुमने के लिए बांधा हुआ खूंटा 'खलेवाली' कहलाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्येनयाग में विशेष है—यूप चषाल न हो, रक्त लोध्र का या गिरि-ाल का बनाया जाय या स्फ्य का अग्र ही यूप का काम दे। भिलावे की कड़ियाँ समिधों के बदले काम में लाई जायं, कुशों की जगह कास ाम में लाये जायं। शववहन के योग्य दो काठ अधिषवण फलक सोमादि कूटने के लिए अपेक्षित फलक) हों, भाँथी से मथा गया वनीत (मक्खन) घृत है। हविर्धान-शकट के स्थान में रथ होता है।

होम के समय ऋत्विक् लाल पगड़ी लगाये हुए, कण्ठ में लम्बायमान ज्ञोपवीत वाले, धनुष में बाण चढ़ाये हुए, भाँथी लिये हुए हों। दक्षिणा के लिए निर्दिष्ट गउएँ काणत्व आदि दोषों से युक्त हों। दान के समय जमान कण्टकों से उन्हें पीडित करे।

तदनन्तर चार व्रात्यस्तोम नाम के एकाह होते हैं। ये गणयाग हैं। जिनके पूर्वजों का उपयन आदि संस्कार न किया गया हो, जिनकी सावित्री छूट गई हो वे व्रात्य कहलाते हैं। यदि उन्हें उपनयन की अभिलाषा हो तो वे व्रात्यस्तोम से यजन कर उपनयन आदि संस्कार के योग्य होते हैं। व्रात्यस्तोम के विषय में "येषां पितामहादि" इस आपस्तम्बसूत्र के अनुसार अपने से लेकर तीन पुरुषों तक पूर्वजों के अकृतसंस्कार होने पर ही प्रायश्चित्तरूप यह प्रवृत्त होता है, उनसे अधिकों के अकृतसंस्कार होने पर इसकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह कुछ लोगों का अभिप्राय है। इस सम्बन्ध में हमारे सूत्रकार पारस्कर ने अवधि नहीं बतलाई है, इसलिए त्रिपुरुषों से अधिक भी पूर्वज यदि अकृतसंस्कार हों तो भी व्रात्यस्तोम से उनकी शुद्धि होती है ऐसा बहुत लोगों का मत है। व्रात्यस्तोम चार प्रकार के होते हैं—उनमें पहला, तीसरा और चौथा अग्निष्टोम साम से समाप्त होते हैं और दूसरा उक्थ्य साम से समाप्त होता है। व्रात्यों की पहले अग्नि नहीं रहती, इसलिए लौकिक अग्नि में ही उनका अनुष्ठान होता है यह कात्यायन

२—यज्ञसमाप्ति का सूचक पशुबन्धन के लिए यज्ञ भूमि में जो काष्ठ गाड़ा जाता है वह यूप चषाल कहलाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का मत है। किन्तु छन्दोग-सूत्र में इसके लिए अग्न्याधान कहा गया है। व्रात्य चार प्रकार के हैं, हीन[१८], निन्दित[१९], कनिष्ठ[२०] और ज्येष्ठ[२१]। उनमें से आचारहीनों का अग्निष्टोमसंस्थाक प्रथम व्रात्यस्तोम में अधिकार है। निन्दितों का दूसरे उक्थ्यसंस्था वाले व्रात्यस्तोम में, कनिष्ठों का तीसरे व्रात्यस्तोम में और ज्येष्ठों का चौथे व्रात्यस्तोम में अधिकार है। विहित के अकरण और निन्दित के आचरण से जो भ्रष्ट हैं वे हीन या हीनाचार कहलाते हैं। मनुष्यों द्वारा अभिशाप देने और पाप के आरोप से जो गर्हित हैं वे निन्दित कहलाते हैं। जाति भाइयों से बहिष्कृत कनिष्ठ कहे जाते हैं तथा जवानी के ढल जाने से जिनकी पुत्रोत्पादन सामर्थ्य निवृत्त हो गई वे ज्येष्ठ हैं। इसमें शेष सब कर्म प्रकृति भूत सुत्या के तुल्य करना चाहिये।

तदनन्तर अग्निष्टुत् नाम का अग्निष्टोम संस्थ्यावान् एकाह[२२] है। तत्पश्चात् अग्निष्टोम साम से समाप्त होने वाले त्रिवृत्स्तोमक चार एकाह होते हैं। उनके नाम हैं—ईप्सुयज्ञ, वृहस्पतिसव, इषु और सर्वस्वार। उनमें सर्वस्वार में विशेषता है—यह मृत्यु चाहने वाले के लिए ही है। इसमें तृतीयसवन में आर्भवपवमान से स्तोत्र होने पर मरणार्थ औदुम्बरी के दक्षिण ओर कृष्णाजिन पर सारे शरीर को वस्त्र से ढक कर दक्षिण सिर हो सोवे, तब से मृत हो जाय। तभी वह कर्म की महिमा से अपना अभीष्ट फल मरण पाता है, कदाचित् जीवित भी रहता है। यदि मर जाय तब और्द्धदैहिक करे। यदि जी जाय तो भोजन त्याग कर मरने की इच्छा करे। अन्य सूत्र में तो "ब्राह्मणाः समापय मे यज्ञमिति प्रेष्याहवनीये प्रविशति" हे विप्रो, आप लोग मेरा यज्ञ समाप्त करें यह कह कर आहवनीय अग्नि में प्रवेश कहा गया है।

तदुपरान्त ऋत्विगपोहनीय नाम के तीन एकाह होते हैं। उनमें प्रथम सर्वस्तोम नाम का अग्निष्टोमसंस्थाक एकाह है, दूसरा और तीसरा दो एकाह क्रम से चतुश्चत्वारिंशस्तोम और अष्टाचत्वारिंश स्तोम नाम के उक्थ्य साम से समाप्त होने वाले हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तदनन्तर वाचस्तोम नामक चार एकाह होते हैं, इनकी समाप्ति अग्निष्टोम साम से होती है। इसमें सब बह्वृचों और सामगों द्वारा सब ऋचाओं और सब सामों का शंसन और स्तवन करना चाहिये[1]। यह इसमें विशेषता है।

अब पृष्ठ्यस्तोम नाम के छः एकाह अग्निष्टोमसंस्थावाले हैं। उनमें क्रम से एक एक एकाह में त्रिवृत् से लेकर त्रयस्त्रिंशपर्यन्त स्तोम करने चाहिये।

तदनन्तर सौमिक चातुर्मास्य होते हैं। उनमें वैश्वदेव के स्थान में पहला पृष्ठ्य दिन होता है। इसमें यूप नहीं होता है, परिधि में ही पशु का नियोजन होता है। इसलिए पशु के बन्धन योग्य मध्यम परिधि मोटी बनानी चाहिये। दूसरा द्विविद नाम का त्र्यह वरुण-प्रघास के स्थान में होता है। तीसरे साकमेध के स्थान में त्र्यह पार्ष्ठिक होता है। उसमें अन्तिम दिन अतिरात्रसंस्थावाला है। शुनासीर के स्थान में ज्योतिष्टोम एकाह है।

तदुपरान्त प्रतिकर्म सोम होते हैं। और वे अग्न्याधेय, पुनराधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, दाक्षायण और आग्रयणेष्टि के स्थान में छः सोमयाग होते हैं। उक्थ्य साम से समाप्त होनेवाला पशुयाग भी किन्हीं को अभीष्ट है।

तदनन्तर सप्तदश नामक पांच अहीन होते हैं। उनमें चार अग्निष्टोमसंस्थ हैं और पाचवाँ उक्थ्यसंस्थ है। उनके नाम हैं—उपहव्य अनिरुक्त, ऋतपेय, दूणाश, वैश्यस्तोम और तीव्रसुत्।

अब द्वन्द्व स्तोमों का प्रतिपादन करेंगे। उन दोनों में से एक का अनुष्ठान कर दूसरे का अवश्य अनुष्ठान करना चाहिये। उनमें राड् विराड् यह पहला द्वन्द्व है। औपसद पुनस्तोम यह दूसरा द्वन्द्व है। दो

---

१ "सर्वा ऋचः सर्वाणि यजूंषि सर्वाणि सामानि वाऽत्र स्तोमे पारिप्लवं शंसन्ति।" क्योंकि ऐसा शास्त्रवचन है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चतुष्टोम यह तीसरा द्वन्द्व है। उद्भिद् बलभिद् यह चौथा द्वन्द्व है, अपचितियाँ यह पांचवाँ, दो अग्नि के स्तोम यह छठा है, पक्षी और ज्योति नामक ऋषभ गोसव यह सातवाँ द्वन्द्व है। उनमें गोसव उक्थसंस्थावाला है।

तत्पश्चात् मरुत्स्तोम नामक गणयज्ञ होता है। उसकी समाप्ति अग्निष्टोम साम से होती है, फिर अग्निष्टोमसंस्थाक ऐन्द्राकुलाय नाम का गण यज्ञ होता। तदुपरान्त उक्थ्यसंस्थावाला इन्द्रस्तोम नाम का राजयज्ञ होता है। तदनन्तर अग्निष्टोम साम से समाप्त होनेवाला इन्द्राग्निस्तोम यज्ञ होता है। उसके बाद निधन नाम के दो अग्निष्टोमसंस्थ होते हैं। फिर संदंश वज्र नाम के अग्निष्टोम साम से समाप्त होने वाले दो गणयज्ञ होते हैं। यहाँ जो गणयज्ञ गिनाये गये हैं, उन्हें छोड़कर अन्यत्र एक ही यजमान होता है। परन्तु गणयज्ञों में गण का ही अधिकार है।

अहीनयाग

अब अहीन यागों का निरूपण करते हैं। अहीन शब्द 'अहः खः क्रतौ' इस वार्तिक से अहन् शब्द से खप्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, अनेक दिनों में पूर्ण होनेवाले क्रतुओं का वाचक है। द्व्यह (दो दिनों से साध्य) से लेकर एकादशाह (एकादश दिनों से साध्य) तक सब क्रतु 'अहीन' कहलाते हैं। तदनन्तर द्वादशाह से लेकर सहस्रवर्ष पर्यन्त सब सत्र हैं। उनका स्वरूप आगे बतलाया जायगा। महर्षि कात्यायन ने कात्यायनश्रौतसूत्र के तेईसवें अध्याय में दो सुत्यावाले तीन द्व्यह, तीन सुत्या वाले पांच, चार सुत्यावाले चार, पांच सुत्यावाले तीन, छः सुत्यावाले तीन, सात सुत्यावाले सात, आठ सुत्यावाला एक, नौ सुत्यावाले दो, दस सुत्यावाले चार, ग्यारह सुत्यावाला एक पौण्डरीक सब मिला कर तैंतीस अहीन कहे हैं। बारह सुत्यावाला द्वादशाह अहीन अनेकविध हैं। इन सब में बारह उपसद होते हैं और एक महीने में पूर्ति होती है। इन में द्व्यह अहीन में सोलह दीक्षाएं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रह उपसद और एक सुत्या होती है। एक महीने में उसकी पूर्ति होती । इसी तरह अन्य अहीनों में जैसे सुत्या बढ़ती है वैसे दीक्षादिन ढ़ते हैं। जैसे तीन सुत्यावाले अहीन में पन्द्रह दीक्षाएँ होती हैं, चार त्यावाले में चौदह दीक्षाएँ इत्यादि। अहीनों में भी द्वादशाह, जामदग्न्य र चतूरात्रों की एक मास में पूर्ति नहीं होती, किन्तु उनसे अतिरिक्तों ही एक मास में पूर्ति होती है। द्वादशाह में बारह दीक्षाएँ, बारह सद और बारह सुत्याएँ होती हैं। अतः उसकी पूर्ति छत्तीस दिनों में ती है।

सूत्रकार ने अहीनों में सबसे पहले अतिरात्रसंस्था वाले तेरह हीन तत् तत् फल के उद्देश्य से कहे हैं। उनमें आदि के चार षोड-ग्रह से रहित हैं, शेष षोडशिकासहित ही हैं। उनकी क्रमसे वसप्तदश, विषुवान्, गौ, आयु, ज्योतिष्टोम, विश्वजित्, त्रिवृत्, ह्वदश, सप्तदश, एकविंश, अप्तोर्याम, अभिजित् और सर्वस्तोम संज्ञा है।

उनके अनन्तर आङ्गिरस, चैत्ररथ और कापिवन नाम के तीन ब्यह । उनमें सोलह दीक्षाएँ, बारह उपसद और दो सुत्याएँ होती हैं। उनमें ाङ्गिरस अग्निष्टोमसंस्थावाला है, अन्य दो षोडशिरहित अतिरात्र-स्थावाले हैं।

तदनन्तर गर्ग, वैद, छन्दोम, अन्तर्वसु और पराक नाम के पांच यह हैं। उनमें तीन सुत्याएँ, पन्द्रह दीक्षाएँ और बारह उपसद होते हैं। नमें पहला अग्निष्टोमसंस्थ, दूसरा उक्थ्यसंस्थ और तीसरा अतिरात्र-स्थ है तथा चौथे और पाँचवें की समाप्ति गर्ग त्रिरात्रवत् होती है।

चार चतुरह चार सुत्यावाले हैं। उनके नाम अत्रिचतुर्वीर, ामदग्न्य, वसिष्ठसंसर्प और विश्वामित्र हैं। उनमें चौदह दीक्षाएँ ौर बारह उपसद होते हैं। इनमें उपसद पुरोडाशयुक्त होते हैं यह ौर अहीनों की अपेक्षा विशेष है।

तदुपरान्त पाँच सुत्या वाले, बाहर उपसद और तेरह दीक्षावाले न पञ्चाह—देवपञ्चाह, पञ्चशारदीय तथा व्रतवान् नामक होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तत्पश्चात् बारह दीक्षा, बारह उपसद और छः सुत्यावाले तीन षडह क्रतु होते हैं। उनमें पहले और दूसरे की क्रम से ऋतुप्रथम और पृष्ठ्यावलम्ब संज्ञा है। तीसरे की कोई विशेष संज्ञा नहीं है। पहले पाँच दिन पृष्ठ्यसंज्ञक तथा छठा विश्वजित् अतिरात्र होता है। प्रतिदिन इन्द्राग्निदेवत्य एक पशु होता है या स्तोमायन होता है। इसी तरह आगे भी समझना चाहिये।

तदुपरान्त सात सप्ताह अहीन होते हैं। उनमें बारह उपसद, ग्यारह दीक्षाएँ तथा सात सुत्याएँ होती हैं। उनके नाम क्रम से ज्योति, गौ, आयु, अभिजित्, विश्वजित्, सर्वजित्, और सर्वस्तोम हैं। इनमें ज्योति, अभिजित् और विश्वजित् ये अग्निष्टोमसंस्थावाले हैं। गौ और आयु उक्थ्यसंस्थ तथा सर्वजित् महाव्रतसंस्थ और सर्वस्तोम अतिरात्रसंस्थ है।

बारह उपसद, आठ सुत्या और दस दीक्षा वाला एक अष्टाह है। उसमें पहले पृष्ठ्य षडह साम से दिनों की समाप्ति होती है। तदुपरान्त महाव्रत और अतिरात्र सामों से होती हैं।

तदनन्तर बारह उपसद नौ सुत्या और नौ दीक्षा वाले दो नवाह होते हैं। प्रथम नवरात्र में ६ दिन का पृष्ठ्य, तदनन्तर तीन त्रिकद्रुक होते हैं। दूसरे नवरात्र में पहले तीन त्रिकद्रुक, तदनन्तर पाँच दिन पृष्ठ्य, उसके अनन्तर अतिरात्र होता है।

बारह उपसद, दस सुत्या और आठ दीक्षावाले चार दशरात्र होते हैं। उनमें चार की क्रम से त्रिककुप्, कौसुरुबिन्द, पूर्वदशरात्र और छन्दोमदशाह संज्ञा है। उनमें प्रथम दशरात्र में प्रथम, तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम और नवम दिन अग्निष्टोमसंस्थ हैं, दशम अतिरात्रसंस्थ तथा शेष उक्थ्यसंस्थ हैं। द्वितीय दशरात्र में पहले से लेकर तीन अग्निष्टोमसंस्थ हैं, तदनन्तर चौथे से नौवें तक छः उक्थ्यसंस्थ तथा दशम अतिरात्रसंस्थ है। तृतीय दशरात्र में प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम और नवम में अग्निष्टोमसंस्था है, दशम में अतिरात्रसंस्था तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वशिष्टों में उक्थ्यसंस्था है। चतुर्थ दशरात्र में प्रथम पृष्ठ्यावलम्ब दनन्तर पाँच पृष्ठ्यसंस्थ, फिर चार दशरात्र, दशम अतिरात्र है।

एकादशरात्र का एक अहीन हैं। उसमें बारह उपसद, ग्यारह त्याएँ तथा सात दीक्षाएँ होती हैं तथा दस हजार दक्षिणा है।

सत्रों का निरूपण

अब सत्रों का निरूपण किया जाता है। सत्र-लक्षण पहले कहा गया है। ह से लेकर एकादशाहपर्यन्त याग अहीन हैं। द्वादशाह अहीन और त्र दोनों हैं, यह पहले निरूपण किया जा चुका है। द्वादशाह पहले हा ही जा चुका है। यहाँ अब त्रयोदशरात्र से लेकर रात्रिसत्रों न निरूपण करते हैं।

सब रात्रिसत्रों में बारह दीक्षाएँ और बारह उपसद होते हैं। किन्तु त्या त्रयोदशरात्रसत्र में तेरह, चतुर्दशरात्रसत्र में चौदह, पञ्चदश-त्रसत्र में पन्द्रह, इसी तरह एक एक की वृद्धि से चत्वारिंशद्रात्र-र्यन्त सत्रों में चालीस सुत्याएँ होती हैं। इससे त्रयोदशरात्र की तीस दिनों में पूर्ति होती है और चतुर्दशरात्र की अड़तीस दिनों में र्ति होती है। इसी प्रकार चत्वारिंशद्रात्र सत्र तक एक एक दिन की द्धि होती है। तदनन्तर एकोनपञ्चाशद्रात्र नाम के सात सत्र होते हैं, र शतरात्र नाम का एक सत्र होता है, यों सैंतीस रात्रिसत्र होते हैं।

उनमें तीन सत्र त्रयोदशरात्र नाम के हैं। उनमें पहले त्रयोदशरात्र में—प्रायणीय अतिरात्र १ म, २ य से ७ म तक पृष्ठ्य षडह, ८ म सर्वस्तोम अतिरात्र, तदनन्तर ९ म से १२ श तक ४ छन्दोम तथा १३ वाँ उदय-नीय अतिरात्र यों दिनों की सज्जा होती है।

दूसरे त्रयोदशरात्र में—एक प्रायणीय अतिरात्र १, पृष्ठ्य षडह २-७, चार छन्दोम ८-११, एक महाव्रत १२ और एक उदयनीय अति-रात्र यों दिनों का क्रम है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीसरे त्रयोदशरात्र में—एक प्रायणीय अतिरात्र १, एक चतुर्विंश महः २, एक अभिजित् ३, तीन स्वरसाम ४–६, एक विषुवान् ७, तीन स्वरसाम ८–१०, एक विश्वजित् ११, एक महाव्रत १२ और एक उदयनीय १३ यों दिनों का क्रम है।

तदनन्तर चतुर्दशरात्र नाम के तीन सत्र होते हैं। उनमें पहले में—एक प्रायणीय अतिरात्र १, फिर दो पृष्ठ्य षडह २–१३, तत्पश्चात् एक उदयनीय अतिरात्र १४ ऐसा क्रम है।

दूसरे चतुर्दशरात्र में—एक प्रायणीय अतिरात्र १, एक ज्योति २, एक आयु ३, एक गौ ४, पृष्ठ्य षडह ५–१०, एक गौ ११, एक आयु १२, एक ज्योति १३ और एक उदयनीय अतिरात्र १४ यों चौदह दिन होते हैं।

तीसरे चतुर्दशरात्र में—एक प्रायणीय १, एक गौ २, एक आयु ३, पृष्ठ्य षडह ४–९, चार छन्दोम १०–१३ तथा एक उदयनीय १४ यों चौदह दिन होते हैं।

तदुपरान्त पञ्चदशरात्र संज्ञक चार सत्र होते हैं। उनमें से पहले में एक प्रायणीय १, पृष्ठ्य षडह २–७, एक महाव्रत ८, षडह पृष्ठ्य ९–१४ तथा एक उदयनीय १५ यों पन्द्रह दिन होते हैं।

दूसरे में—एक प्रायणीय १, एक अग्निष्टुत् २, एक ज्योति ३, एक गौ ४, एक आयु ५, षडह पृष्ठ्य ६–११, आयु गौ ज्योति १२–१४ और एक उदयनीय १५ यों दिनों का क्रम है।

तीसरे में—प्रायणीय अग्निष्टुत १, ज्योति, गौ, आयु २–४, पृष्ठ्य षडह ५–१०, चार छन्दोम ११–१४ तथा एक उदयनीय १५ यों दिनों का क्रम है।

चौथे पञ्चदशरात्र में—प्रायणीय अतिरात्र १, शेष तीसरे के तुल्य २–१५ इस प्रकार दिनों का क्रम है।

षोडशरात्र में—प्रायणीय १, ज्योति, गौ, आयु २–४, पृष्ठ्य ५–१०, चार छन्दोम ११–१४, महाव्रत १५, उदयनीय १६ यों सोलह दिन होते हैं।

अष्टादशरात्र में—प्रायणीय १, षडह अभिप्लव २–७, षडह पृष्ठ्य ८–१३, चार छन्दोम १४–१७ और उदयनीय १८ यों अठारह दिन होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकोनविंशतिरात्र में—प्रायणीय १, षडह अभिप्लव २–७, शेष पूर्ववत् यों उन्नीस दिन होते हैं।

विंशतिरात्र में—प्रायणीय १, अभिप्लव २–७, अभिजित् ८, विश्वजित् ९, पृष्ठ्य १०–१५, चार छन्दोम १६–१९ और उदयनीय २० यों बीस दिन होते हैं।

एकविंशतिरात्र नाम के दो सत्र हैं। उनमें से पहले में—षोडशिरहित प्रायणीय १, अतिरात्र २, पृष्ठ्य ३–८, दो षडह अभिप्लव ९–२०, उदयनीय २१ यों इक्कीस दिन होते हैं।

दूसरे में—प्रायणीय १, पृष्ठ्य २–७, तीन स्वरसाम ८–१०, विषुवान् ११, तीन स्वरसाम १२–१४, पृष्ठ्य १५–२० और उदयनीय २१ यों इक्कीस दिन होते हैं।

द्वाविंशतिरात्र सत्र में—प्रायणीय १, ज्योति २, गौ ३, आयु ४, षडह अभिप्लव ५–१०, षडह पृष्ठ्य ११–१६, चार छन्दोम १७–२०, महाव्रत २१ और उदयनीय २२ यों बाईस दिन होते हैं।

त्रयोविंशतिरात्र सत्र में प्रायणीय १, पञ्चाह अभिप्लव २–६, अभिप्लव ७–१२, पृष्ठ्य १३–१८, चार छन्दोम १९–२२ और उदयनीय २३ यों तेईस दिन होते हैं।

चतुर्विंशतिरात्र नाम के दो सत्र हैं। उनमें पहले में—एक प्रायणीय १, दो अभिप्लव २–१३, षडह पृष्ठ्य १४–१९, चार छन्दोम २०–२३ और एक उदयनीय यों २४ दिन होते हैं।

दूसरे में—एक प्रायणीय १, षडह पृष्ठ्यस्तोम २–७, एक अनिरुक्त अग्निष्टोम ८, पृष्ठ्य षडह के प्रतिलोम तीन उत्तर दिन ९–११ (६,५,४,), अनुलोम वे ही १२–१४ (४,५,६,), अनिरुक्त अग्निष्टोम १५, षडह पृष्ठ्य-स्तोम १६–२१, अनिरुक्त दो अग्निष्टोम २२, २३ और उदयनीय २४ यों २४ दिन होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पञ्चविंशतिरात्र में—एक प्रायणीय १, दो अभिप्लव २-१३, पृष्ठ्य १३-१९, चार छन्दोम २०-२३, एक महाव्रत २४ और एक उदयनीय २५ इस तरह २५ दिन होते हैं।

षड्विंशतिरात्र सत्र में—एक प्रायणीय १, एक गौ २, एक आयु ३, दो अभिप्लव ४-१५, षडह पृष्ठ्य १६-२१, चार छन्दोम २२-२५ और एक उदयनीय यों छब्बीस दिन होते हैं।

सप्तविंशतिरात्र सत्र में—एक प्रायणीय १, एक ज्योति २, एक गौ ३, एक आयु ४, दो अभिप्लव ५-१६, षडह पृष्ठ्य १७-२२, चार छन्दोम २३-२६, और एक उदयनीय २७ यों सत्ताईस दिन होते हैं।

अष्टाविंशतिरात्र सत्र में—एक प्रायणीय १, एक ज्योति २, एक गौ ३, एक आयु ४, दो अभिप्लव ५-१६, षडह पृष्ठ्य १७-२२, चार छन्दोम २३-२६, एक महाव्रत २७ और एक उदयनीय २८ ऐसा क्रम है।

एकोनत्रिंशद्रात्र में—प्रायणीय १, अभिप्लव के पाँच दिन २-६, दो अभिप्लव ७-१८, षडह पृष्ठ्य १९-२४, चार छन्दोम २५-२८ और एक उदयनीय २९ यों उन्तीस दिन होते हैं।

त्रिंशद्रात्र सत्र में—एक प्रायणीय १, तीन षडह अभिप्लव २-१९, षडह पृष्ठ्य २०-२५, चार छन्दोम २६-२९ और एक उदयनीय ३०, यों तीस दिन होते हैं।

एकत्रिंशद्रात्र सत्र में—चार छन्दोम के बाद एक महाव्रत अधिक है, शेष सब दिन पूर्ववत् होते हैं।

द्वात्रिंशद्रात्र सत्र में—एक प्रायणीय १, एक गौ २, एक आयु ३, तीन अभिप्लव (षडह) ४-२१, षडह पृष्ठ्य २२-२७, चार छन्दोम २८-३१ और एक उदयनीय ३२ यों बत्तीस दिन होते हैं।

त्रयस्त्रिंशद्रात्र नामक सत्र के तीन भेद हैं। उनमें पहले में—एक प्रायणीय १, तीन अभिप्लव के पाँच दिन २-१६, एक विश्वजित् अति-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्र १७, तदनन्तर चतुर्थ पञ्चाह १८–२२, षडह पृष्ठ्य २३–२८, चार छन्दोम २९–३२ और एक उदयनीय ३३ यों तैंतीस दिन होते हैं।

दूसरे में—एक प्रायणीय १, अभिप्लव २–७, अतिरात्र ८, षडह अभिप्लव ९–१४, एक अतिरात्र १५, षडह अभिप्लव १६–२१, पृष्ठ्य षडह २२–२७, चार छन्दोम २८–३१, एक महाव्रत ३२ और एक उदयनीय ३३ यों तैंतीस दिन होते हैं।

तीसरे में—एक प्रायणीय १, तीन पञ्चाह अभिप्लव २–१६, एक विश्वजित् अतिरात्र १७, तीन अभिप्लव पञ्चाह १८–३२ और एक उदयनीय ३३ यों तैंतीस दिन होते हैं।

चतुस्त्रिंशद्रात्र सत्र में—प्रायणीय १, ज्योति, गौ, आयुर२–४, तीन षडह अभिप्लव ५–२२, षडह पृष्ठ्य '२३–२८, चार छन्दोम २९–३२, एक महाव्रत ३३ और एक उदयनीय ३४ यों चौंतीस दिन होते हैं।

पञ्चत्रिंशद्रात्र सत्र में—एक प्रायणीय १, अभिप्लव के पाँच दिन २–६, तीन षडह अभिप्लव ७–२४, षडह पृष्ठ्य २५–३०, चार छन्दोम ३१–३४ और एक उदयनीय ३५ यों दिनों की रचना होती है।

षट्त्रिंशद्रात्र सत्र में—प्रायणीय १, चार षडह अभिप्लव २–२५, षडह पृष्ठ २६–३१, चार छन्दोम ३२–३५ और एक उदयनीय यों छत्तीस दिन होते हैं।

सप्तत्रिंशद्रात्र में—प्रायणीय १, चार षडह अभिप्लव २–२५, षडह पृष्ठ्य २६–३१, चार छन्दोम ३२–३५, एक महाव्रत ३६ और एक उदयनीय ३७ यों सैंतीस दिन होते हैं।

अष्टत्रिंशद्रात्र में—प्रायणीय १, गौ, आयु २, ३, चार षडह अभिप्लव ४–२७, षडह पृष्ठ्य २८–३३, चार छन्दोम ३४–३७ और एक उदयनीय यों अड़तीस दिन होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकोनचत्वारिंशद्रात्र में—प्रायणीय १, ज्योति, गौ और आयु २-४, चार अभिप्लव ५-२८, षडह पृष्ठ्य २९-३४, चार छन्दोम ३५-३८ और एक उदयनीय ३९ इस तरह उन्तालीस दिन होते हैं।

चत्वारिंशद्रात्र में—छन्दोम के बाद १ महाव्रत अधिक है। शेष पूर्ववत् होते हैं।

एकोनपञ्चाशद्रात्र नाम के सात सत्र हैं। उनमें से प्रथम में—प्रायणीय १, तीन दिन कौसुरुबिन्द २-४, अतिरात्र ५, नौ उक्थ्य ६-१४, एक षोडशी १५, अतिरात्र १६, बारह उक्थ्य १७-२८, एक अतिरात्र २९, षडह पृष्ठ्य ३०-३५, एक अतिरात्र ३६, बारह उक्थ्य ३७-४८ और एक उदयनीय ४९ इस तरह उनचास दिन होते हैं।

द्वितीय में—एक प्रायणीय १, दो अभिप्लव २-१३, गौ, आयु १४-१५, दो अभिप्लव १६-२७, अभिजित् और विश्वजित् २८-२९, अभिप्लव ३०-३५, एक सर्वस्तोम ३६, एक नवसप्तदश ३७, पृष्ठ्य ३८-४३, चार छन्दोम ४४-४७, महाव्रत ४८ और एक उदयनीय ४९-इस तरह उनचास दिन होते हैं।

तृतीय में—प्रायणीय १, चार अभिप्लव २-२५, एक सर्वस्तोम २६, दो अभिप्लव २७-३८, पृष्ठ्य ३९-४४, चार छन्दोम ४५-४८ और एक उदयनीय यों ४९ दिन होते हैं।

चतुर्थ में—एक प्रायणीय १, एक चतुर्विंश २, तीन अभिप्लव ३-२०, नवरात्र २१-२९, अभिप्लव ३०-३५, आयु ३६, गौ ३७, दशरात्र ३८-४७, महाव्रत ४८ और एक उदयनीय ४९ यों ४९ दिन होते हैं।

पञ्चम में—एक प्रायणीय १, चार नवरात्र २-३७, एक दशरात्र ३८-४७, एक महाव्रत ४८ और एक उदयनीय ४९ यों उनचास दिन होते हैं।

षष्ठ और सप्तम में—एक प्रायणीय १, चार अभिप्लव २-२५, एक महाव्रत २६, दो अभिप्लव २७-३८, एक दशरात्र ३९-४८ और एक उदयनीय ४९ यों उनचास दिन होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शतरात्र नामक सत्र में—प्रायणीय १, त्रिकद्रुक २-४, चौदह अभि-
व ५-८८, दशरात्र ८९-९८ महाव्रत ९९ और एक दिन उदयनीय
०० इस तरह सौ दिन होते हैं।

तदनन्तर एक वर्ष में साध्य 'आदित्यानामयन' नामक सत्र में—एक
यणीय १, एक चतुर्विंश २, दो अभिप्लव ३-१४, षडह पृष्ठ्य
-२०, दो अभिप्लव २१-३२, इस तरह प्रथम मास हुआ। इसी तरह
तीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम मास होते हैं। छठे महीने में तीन
भिप्लव १-१८, पृष्ठ्य १९-२४, बृहस्पतिसव २५, तीन स्वरसाम
-२८ दिन होते हैं।

तदनन्तर 'अङ्गिरसामयन' नामक सत्र संवत्सरसाध्य है। उसे
वामयन की तरह ही समझना चाहिए।

इसी तरह 'इति-वातवतोरयनं' नामक सत्र भी एक संवत्सर में
ाध्य है। उसे भी गवामयन की तरह ही समझें।

तदनन्तर 'कुण्डपायिनामयन' नामक सत्र भी एक संवत्सर में साध्य
। यहां एक महीनेभर दीक्षा, दूसरे महीनेभर अग्निहोत्र, फिर महीने-
र दर्शपूर्णमास, फिर महीनेभर वैश्वदेव पर्व, फिर महीनेभर वरुण-
वास, फिर महीनेभर साकमेध और फिर महीनेभर शुनासीरीय। इस
रह छः मास बीत जाने के बाद शेष उत्तर के छः मासों में इतिवा-
वतोरयन के पूर्व पक्ष से ही अनुष्ठान करना चाहिए। इसमें होता
द्गाता, मैत्रावरुण, प्रस्तोता और प्रतिप्रस्थाता ये ही पाँच ऋत्विक्
ते हैं, अन्य नहीं। उनमें होता आध्वर्यव, पौत्र और हौत्र (अध्वर्यु
, पोता का और होता का) कर्म करे। इसी तरह उद्गाता नेष्टा
ौर अच्छावाक के कर्म करे। मैत्रावरुण ब्रह्मा और प्रतिहर्ता के कर्म
रे। प्रस्तोता ब्राह्मणाच्छंसी और ग्रावस्तोत्रीय कर्म करे तथा प्रतिप्र-
ाता अग्नीध्र और उन्नेता के कर्म करे।

तदुपरान्त संवत्सर में साध्य सर्पसत्र होता है। उसमें सम्पूर्ण गवा-
यन ही होता है। अथवा पहले प्रायणीयेष्टि कर तदुपरान्त द्वन्द्व सोमों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में दूसरा विराड् नामक एकाह, जिसकी समाप्ति अग्निष्टोम से होती है तथा कौसुरुविन्द का दूसरा त्रिवृत् अग्निष्टोम—इन दोनों दिनों को उलट-पुलट कर प्रयोग करते हुए सारे सत्र की पूर्ति कर दे।

उसके पश्चात् तापश्चित नाम का तीन वर्षों में साध्य सत्र होता है। इसमें पूरे वर्ष की दीक्षा, संवत्सरपर्यन्त उपसद और संवत्सर भर सुत्याएँ होती हैं। इसमें सम्पूर्ण विधि गवामयन के तुल्य है।

तदुपरान्त महातापश्चित नामक सत्र होता है। इसमें तीन वर्ष तक उपसद होते हैं। शेष सब विधि तापश्चित के तुल्य है।

तदनन्तर क्षुल्लकतापश्चित सत्र होता है। उसमें चार चार महीने में दीक्षा, उपसद और सुत्याएँ होती हैं।

तदनन्तर अग्निसत्र नाम का सत्र होता है। उसमें एक हजार सुत्याएँ होती हैं। उसमें एक प्रायणीय १, त्रिकद्रुक २-४, एक सौ चौसठ १६४ अभिप्लव ५-९८८, षडह पृष्ठ्य ९८९-९९४, चार छन्दोम ९९५-९९८, एक महाव्रत ९९९ तथा एक उदयनीय १००० ऐसा क्रम है।

तदनन्तर त्रिसंवत्सर नाम का सत्र होता है। उसमें साठ दीक्षाएँ, पूरे वर्ष तक उपसद और तीन वर्षपर्यन्त सुत्याएँ होती हैं।

तदुपरान्त चार महासत्र होते हैं। उनमें प्रजापतिसत्र पहला है, उसमें बारह वर्ष तक सुत्याएँ, उपसद और दीक्षाएँ होती हैं।

तदुपरान्त 'शाक्त्यानामयन' नाम का दूसरा सत्र है। उसमें ३६ छत्तीस वर्ष तक सुत्याएँ होती हैं।

'साध्यामामयन' नाम का तीसरा सत्र है। उसमें सौ वर्ष तक सुत्या होती हैं। तदनन्तर 'विश्वसृजामयन' नाम का चौथा सत्र है। उसमें हजार सुत्याएं होती।

तदनन्तर 'साध्यानामयन' नाम का तीसरा सत्र होता है, उसमें सौ वर्ष तक सुत्याएँ होती है, तदुपरान्त विश्वसृजामयन नाम का चौथा सत्र होता है उसमें हजार सुत्माएँ होती हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तदुपरान्त सारस्वतसत्र या यात्सत्र[1] इस नाम से प्रसिद्ध तीन सत्र होते हैं। इनकी दीक्षाएं प्रभासक्षेत्र, जहाँ सरस्वती और समुद्र संगम है, में होती हैं। इनमें चौथे सारस्वतसत्र की 'दार्षद्वत' संज्ञा है। तदनन्तर तुरायण नामक सत्र होता है।

इस प्रकार श्रौतसूत्र ग्रन्थ में प्रवेश पाने के इच्छुक ग्रन्थपरिश्रम के बिना ही पहले सामान्यतः पदार्थों के जिज्ञासु छात्रों को पदार्थ ज्ञान कराने के लिए मैंने ग्रन्थस्थ विषयों का ही संकलन किया है। विशेष रूप से श्रौत पदार्थों का ज्ञान तत् तत् प्रकरण से ही कर लेना चाहिये।

---

१ यात्वा यात्वा क्रियन्ते या यान्ति च तानि सत्राणि इति यात्सत्राणि। जो चलकर किये जाते हैं वे यात्सत्र हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection